प्राचीन भारत में सामाजार्थिक परिवर्तन (600 ई०पू० से 200ई तक)

(SOCIO - ECONOMIC CHANGES IN ANCIENT INDIA)
(600 B.C. TO 200 AD.)
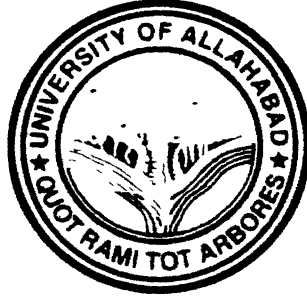
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की

डी० फिल्०

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० शशिकान्त राय

प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

रागिनी शर्मा

शोध छात्रा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ईस्वी तक 'प्राचीन भारत में सामाजार्थिक परिवर्तन' विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने की प्रेरणा मुझे मेरे गुरूवर डॉ0 शशिकान्त राय जी से मिली। किसी भी युग के सामाजार्थिक परिवर्तन में उसकी पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होता है। भारतीय जीवन-आयामों को समझने के लिए सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि के अध्ययन की आवश्यकता और भी अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। भारतीय समाज गतिशील रहा है। चूँकि समाज एवं अर्थ की सदैव परस्पर निर्भरता रही है इसलिए एक में परिवर्तन होने से दूसरे में परिवर्तन होना स्वाभाविक हो जाता है। फिर भी भारतीय समाज ने अपना मूल उत्स कभी नहीं खोया। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में गहराई से उतरने का एक विनम्र प्रयासमात्र है। इस अध्ययन में उन पृष्ठभूमियों पर विचार किया गया है जिससे न केवल समष्टि विषयक परिवर्तन हुए बल्कि व्यष्टि विषयक परिवर्तन भी हुए जिन पर सम्यक् दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। शोध-प्रबन्ध के अध्ययन का दृष्टिकोण सामान्य रूप से प्राचीन भारतीय सामाजार्थिक इतिहास की ओर उन्मुख रहा है।

शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करते समय उपलब्ध साक्ष्यों के विश्लेषण से हमें यह अनुभव हुआ कि प्राचीन भारतीय सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमियों का विवेचन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। मेरी यह धारणा है कि किसी युग के परिवर्तन की राजनीतिक पृष्ठभूमि में न केवल राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी रहीं बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न घटनायें और उन घटनाओं से उत्पन्न

परिस्थितियाँ तथा उन परिस्थितियों पर आधारित राजकीय नीतियाँ भी सामाजार्थिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारण रहे हैं। जिस प्रकार राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त कर निम्न वर्ण के लोग भी उच्च सामाजिक वर्ण में शामिल हुए, ठीक उसी प्रकार इन अधिकारों के अभाव में उच्च वर्ण के लोग भी निम्न वर्ण में दृष्टिगत होते हैं।

इसके अतिरिक्त सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में धार्मिक, वैचारिक तथा शैक्षिक तत्वों पर भी विचार किया जा सकता है।

अंततः इन पृष्ठभूमियों के आलोक में सामाजार्थिक परिवर्तन का जो स्वरूप उभर रहा था उसको नगरीकरण तथा सामाजिक रूपान्तरण के संदर्भ में देखने का सतत् प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शीर्षक के चयन में छठीं शताब्दी ई0पू0 की वह परिस्थितियाँ रही है जिसके अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि लगभग सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं जो लगभग दूसरी शताब्दी ईस्वी तक अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँचते है और विभिन्न ऐतिहासिक सामग्रियों द्वारा प्रमाणित भी होते है।

अध्ययन कालीन स्रोतों में मुख्य रूप से वैदिक साहित्यिक परम्परा विशेष रूप से सूत्र और स्मृति साहित्य महत्वपूर्ण है। धर्मसूत्रों में गौतम, वसिष्ठ, बौधायन एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। स्मृतियों में मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति जो कि प्राचीन भारतीय सामाजार्थिक इतिहास के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ है; के ऊपर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध स्वाभाविक रूप से ही प्रचुर मात्रा में निर्भर रहा है। स्मृतियों के काल-निर्णय के लिए डॉ0 काणे के विचार को मानक माना गया है और रीज डेविड, फिक आदि विद्वानों का अनुसरण करते हुए जातकों की सामग्रियों का

प्रयोग किया गया है। अर्थशास्त्र अधीतकालीन इतिहास के लिए मानक और प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करता है। अर्थशास्त्र की सामग्री को प्रो0 कांग्ले तथा शामशास्त्री द्वारा सम्पादित सामग्रियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्यों की सामग्रियाँ भी प्रस्तुत काल के लिए प्रयोज्य है हलांकि कलियुग वर्णन अधीतकाल के बाद का माना जाता है लेकिन फिर भी इनका प्रयोग यह मानकर किया गया है कि इनकी जड़े समाज में और पहले से विद्यमान रही होंगी।

यहाँ मुझे लिखने में अपार हर्ष एवं गर्व का अनुभव हो रहा है कि डॉ0 शशिकान्त राय, प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के सम्यक निर्देशन एवं सतत् निरीक्षण की परिणति यह शोध-प्रबन्ध है। अतः गुरूवर डॉ0 शशिकान्त राय जी की मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके प्रति शब्दों में कुछ कहना उन्हें सीमा में बांधना होगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के विभागाध्यक्ष गुरूवर प्रो0 ओम प्रकाश जी जिनके विद्वतापूर्ण सुझाव मुझे समय-समय पर मिलते रहे, उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष गुरूवर प्रो0 उदय नारायण राय एवं विभाग के ही प्राध्यापक डॉ0 देवी प्रसाद दूबे, जिन्होंने हर पल अपने विद्वतापूर्ण सुझावों द्वारा सही मार्गदर्शन किया। एतद्र्थ मै अपने इन गुरूजनों की कृतज्ञ हूँ।

विभाग के ही अन्य गुरूओं के सहयोग एवं सुझावों के प्रति आभार प्रकट करना मै अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ।

प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुस्तकालयाध्यक्ष सर्वश्री सतीश राय का सहयोग भी हमेशा मिलता रहा। अतः इनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है।

अंत में मै अपने परिवारजनों के प्रति आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ। पिता जी डॉ0 रामकमल राय, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग (अधुना भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष), आपने हमेशा व्याकरण की अशुद्धियों को दूर करने, शब्दों के सटीक अर्थ देने एवं सही भाषा का प्रयोग करने में हर पल मेरी सहायता की, माता जी शोध-प्रबन्ध पूरा करने की प्रेरणा सदैव देती रहीं, ज्येष्ठश्री डॉ0 निशीथ राय, प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, का अपेक्षित सहयोग सदैव मिलता रहा, अतः इनके सहयोग को मै कभी भी नहीं भूल सकती। अग्रज श्री अरूण कुमार शर्मा मेरे लिए सदैव ही प्रेरणा के स्रोत रहे है। अंत में मै अपने पति श्री उत्पल राय का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने शोध-प्रबन्ध पूरा करने में अपने कर्तव्य को पूरे मनोयोग से निभाया है।

रागिनी शर्मा

\- रागिनी शर्मा

विषय - सूची

****

अध्याय - प्रथम

स्रोत - सामग्री

भारत में प्राचीन काल से ही समय-समय पर ऐसे अनेकानेक साहित्य का निर्माण हुआ जिनसे भारतीय समाज और अर्थ पर प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मग्रंथ जैसे मुख्य साहित्य के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की भी रचना की गयी, जिनसे तत्कालीन समाज की गतिविधियों का पता चलता है। इतिहास और साहित्य दोनों विधाओं से युक्त अनेक कृतियाँ लिखी गयीं जिनसे समाज का सास्कृतिक जीवन उत्तरोत्तर मुखर होता है और इनके अनुपूरक सामग्री के रूप में अभिलेख, मुद्रायें, अवशेष, स्मारक आदि विविध पुरातात्विक सामग्रियों का प्रयोग भारतीय समाज के विविध पक्ष को उद्घाटित करने में किया जाता है जिससे इतिहास की प्रामाणिकता पुष्ट होती है। विदेशी लेखकों और यात्रियों के विवरण भी भारतीय समाज और अर्थ के इतिहास निर्माण में सहायता प्रदान करते है, यद्यपि इनके विवरण कभी-कभी बहुत ही अनोखे होते हैं।

सामाजिक इतिहास की दृष्टि से धर्मशास्त्रों का बहुत बड़ा महत्व है। ये धर्मशास्त्र चार है,, जो एक प्रकार की विधि-विषयक रचनायें है। ये है - धर्मसूत्र, स्मृति, टीका और निबन्ध आदि इनका रचनाकाल लगभग ई0पू0 500 से 200 के लगभग माना जाता है। धर्मसूत्रों को गद्य में लिखा गया है। इन विधि ग्रंथों में सर्वप्रथम वर्णव्यवस्था का सुनिश्चित रूप से वर्णन मिलता है और चारों वर्णो के अलग-अलग धर्म-कर्म निर्धारित किये गये है और राजा को उनका रक्षक बताया गया है।

धर्मसूत्रों में 8 प्रकार के विवाहों का भी वर्णन किया गया है। जिनमें कुछ धर्मसम्मत तथा कुछ को धर्मविरूद्ध बताया गया है। नियोग अथवा विधवा विवाह किन

परिस्थितियों में हो सकता है इसके लिए धर्मशास्त्रकारों ने नियम बनाये हैं। इनमें पहले-पहल अंत्यजों और वर्णसंकरों का उल्लेख है। पुत्र के अधिकार तथा पिता के मरने पर सम्पत्ति में हिस्सेदारी आदि की चर्चा है। इस प्रकार इन सब पहलुओं पर सम्यक प्रकाश डालने हेतु धर्मसूत्रों का अध्ययन आवश्यक है।

धर्मसूत्रों के अध्ययन से न केवल सामाजिक अवस्था का पता चलता है बल्कि इससे आर्थिक अवस्था का भी पता चलता है। उनमें वणिक और शिल्पियों के श्रेणियों की चर्चा है। श्रेणियों के कार्यो तथा विधि-विधानों का विस्तृन वर्णन प्राप्त होता है। व्यापार सिक्कों का निर्माण तथा प्रयोग आदि का पता चलता है। सूद-ब्याज से सम्बन्धित नियमों आदि का जिक्र भी हमें धर्म सूत्रों से प्राप्त होता है। इसलिए आर्थिक दृष्टि से भी धर्मसूत्रों का अध्ययन लाभदायक है।

धर्मसूत्रों के बाद स्मृतियों का स्थान आता है। स्मृतियों का रचनाकाल लगभग 200 वर्ष ई0पू0 से 9वीं सदी तक है। स्मृतियाँ पद्य में लिखी गयी हैं। स्मृतियों में मनुस्मृति को सबसे पुराना माना जाता है। इसका रचनाकाल लगभग 200 ई0पू0 से 200 ई0 के बीच का माना जाता है। मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, वृहस्पति, कात्यायन आदि स्मृतियाँ प्राचीन हैं जिन पर कालान्तर में भाष्य अथवा टिप्पणियाँ लिखी गयीं। मनुस्मृति पर मेधा तिथि, गोविन्दराज और कुल्लूक भट्ट की टीकायें हैं, जो तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों को प्रतिपादित करती हैं। विश्वरूप, विज्ञानेश्वर और अपरार्क ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीकायें लिखीं। एक ही विषय पर इन धर्मशास्त्रकारों और टीकाकारों के भिन्न-भिन्न मत भी पाये जाते है इन मतों को देशकाल परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही ठीक से समझा जा सकता है और उनसे यह भी पता लगता है संस्थाओं में परिवर्तन होते रहते थे। स्मृतियों के समान ये टीकायें और भाष्य भी

सामाजिक जीवन का विस्तृत विवेचन करते हैं। पद्मपुराण के अनुसार स्मृतियों की सख्या 36 है, वृद्ध गौतम के अनुसार 56 तथा वैजयन्ती और वीर मित्रोदय के अनुसार 57 ।

मनुस्मृति में अनेकानेक वर्णसकर जातियों का वर्णन है। इसके 10वें अध्याय में 61 वर्णसंकर जातियों[1] का वर्णन है जिनकी उत्पत्ति अधिकतर प्रतिलोम प्रक्रिया के फलस्वरूप बतलाई गयी है, जैसे यदि ब्राह्मणी के साथ शूद्र के संयोग से कोई पैदा हो तो वह चंडाल कहलाता है और वह प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न माना जाता है। ब्राह्मण माता और वैश्य पिता की संतान 'अबष्ठ', ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की 'निषाद', क्षत्रिय पिता और शूद्र माता की 'उग्र', क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता की सूत, वैश्य माता और ब्राह्मण पिता की 'विदेह' और वैश्य पिता और क्षत्रिय माता की 'मागध' कहलाई। पहले तीन उदाहरण अनुलोम और पिछले तीन प्रतिलोम विवाहों के है। इस प्रकार अनेक प्रतिलोम जातियों का वर्णन मनुस्मृति में है और उनमें से अधिकाशतः शूद्र और अंत्यज की कोटि में रखे गये हैं।

जातकों से चाण्डाल की अत्यन्त हीन अवस्था का पता चलता है। उसकी अनेकानेक दयनीय अवस्थाओं का चित्रण है। उससे हवा भी दूषित हो गयी समझी जाती थी।[2]

सामाजिक आर्थिक जीवन से सम्बन्धित इतिहास निर्माण के लिए गृह्यसूत्रों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इनका रचनाकाल लगभग ई0पू0 500-200 है।[3] गृह्यसूत्रों खदिर गोभिल, बौधायन, पराशर इत्यादि प्राचीन हैं। गृह्य सूत्रों में संस्कारों के

सम्बन्ध में अनेक अनुष्ठान निर्धारित है जिनसे प्राचीनकाल के भौतिक और आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। धर्मसूत्रों के समान गृह्य सूत्र भी गद्य में लिखे गये है।

प्राचीन भारत में दो महाकाव्य रचे गये। महाभारत जो व्यास की कृति मानी जाती है तथा रामायण जिसके रचनाकार बाल्मीकि थे। इन महाकाव्यों से तन्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन उद्घाटित होते है तथा समाज के तारतम्यिक विकास का ज्ञान भी प्राप्त होता है। बाल्मीकि ने अपने नायक और अराध्य देव राम के चरित्र-चित्रण के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन का प्रतिपादन किया है तथा राजपरिवार और जनपरिवार के पारस्परिक सम्बन्ध को भी विवृत किया है। महाभारत में इतिहास, उपाख्यान, उपदेश, दर्शन आदि का संकल्न है। जीवन के विविध पक्षों और समाज से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का आख्यान के माध्यम से आकर्षक वर्णन किया गया है।

मौर्ययुगीन भारतीय सामाजिक और आर्थिक जीवन का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने वाला अर्थशास्त्र एकमात्र ग्रंथ है। इसमें जीवन और समाज के विविध पक्षों, कार्यो, समस्याओं और उनके समाधान के लिए राज्य द्वारा निर्मित विभिन्न, निर्देशों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। इसकी रचना अधिकांशतः गद्य में हुई है। कहीं-कहीं पद्य भी मिलते है पर उन्हें प्रक्षिप्त माना जाता है। स्वभावतः अर्थशास्त्र में अर्थसम्बन्धी विषयों का विशद् विवेचन है। द्वितीय अधिकरण के पढ़ने से कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सिंचाई, मुद्रा की ढलाई इत्यादि बहुत प्रकार के आर्थिक क्रिया-कलापों पर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य ने सभी प्रमुख आर्थिक क्रिया-कलापों का संचालन राजा के हाथ में दिया है और हर कार्य के लिए एक अध्यक्ष नियुक्त करने की व्यवस्था दी है। अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष आदि

अनेक अध्यक्षों की चर्चा है, और आर्थिक क्रिया-कलापों को सम्पादित करने के लिए उनके कर्तव्यों का निर्धारण है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राचीन भारतीय के समाज के स्वरूप को समझने के लिए यथेष्ठ सामग्री मिलती है। इसमें दासकर्मकल्प नामक अध्याय है जिसमें विभिन्न प्रकार के दासों की चर्चा है। कौटिल्य ने 8 प्रकार के विवाहों का भी वर्णन किया है और ातलाया है कि उसमें चार धर्म्य हैं और चार अधर्म्य हैं। वैसे तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ब्राह्मणवादी परम्परा की प्रधानता है लेकिन निकट से देखने से धर्मशास्त्रों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुछ अंतर मालूम पड़ता है।[5] धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणों को अनेक सुविधायें दी गयी है तथा साथ ही अपराधी ब्राह्मण को कड़े दण्ड देने की भी व्यवस्था है[6] ऐसा लगता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में क्षत्रियों का कुछ अधिक प्रभुत्व स्थापित है।[7]

संस्कृत साहित्य में 'पाणिनिकृत', 'अष्टाध्यायी' सर्वप्रथम लिखा गया एक महान व्याकरण ग्रंथ हैं। 'पाणिनि' के 'अष्टाध्यायी' नामक व्याकरण के सूत्रों को समझाने के लिए जो उदाहरण दिये गये है उनसे आर्थिक और सामाजिक अवस्था का पता लगाया जा सकता है। इसकी रचना छठी सदी ई0पू0 से तीसरी सदी ई0पू0 के बीच में किसी समय की गयी।[8] इसका भाष्य दूसरी सदी ईसा पूर्व में पतंजलि ने 'महाभाष्य' के रूप में किया। अष्टाध्यायी और उसकी टीकाओं के आधार पर वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पाणिनिकालीन भारत' नामक पुस्तक लिखी।

प्राचीन भारतीय समाज और अर्थ का इतिहास बौद्ध-साहित्य से भी स्पष्ट और निर्मित होता है तथा इसमें हिन्दू समाज के पूर्ववर्ती और परवर्ती जीवन का दिग्दर्शन

होता है। इसमें जातकों का सर्वप्रथम स्थान है, जिनकी रचना प्रायः ई0पू0 पहली सदी में हो चुकी थी। इसकी पुष्टि सांची और भरहुत के स्तूपों पर अंकित कथाओं से होती है। उनमें जातक कथाओं के दृश्य चित्रित हैं। जातकों में बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ विवृत हैं जिसमें उस समय की सामाजिक और आर्थिक अवस्था की झलक मिलती है। जातक बतलाते है कि वणिक समुदाय का समाज में अच्छा स्थान था और वे जल-स्थल दोनों मार्ग से व्यापार करते थे।

त्रिपिटक बौद्ध धर्म का आधारभूत साहित्य है। पालि में लिखे इस बौद्ध साहित्य को तीन कोटियों में बाटा गया है - (1) सुत्तपिटक, (2) विनय पिटक और अभिधम्मपिटक। सुत्तपिटक में गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का संग्रह है किन्तु इसके अतिरिक्त बहुत सी कथायें भी मिलती हैं। सुत्तपिटक में पांच निकाय है - दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, सयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। दीघ निकाय सुत्तपिटक का प्राचीन अंश है जिसमें कृषि व्यवस्था, वाणिज्य इत्यादि के विषय में जानकारी मिलती है। यह भी पता चलता है कि गौतम बुद्ध ब्राह्मणों को केवल जन्म के आधार पर समाज में सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं मानते थे, पर आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से खुद्दक निकाय में समाविष्ट जातक कथाओं का सबसे अधिक महत्व है।

विनयपिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों के पालनार्थ नियमों का संग्रह है। भिक्षाटन के द्वारा उनके लिए सादा जीवन बिताना जरूरी था। उन्हें सोने-चाँदी छूने की मनाही थी। वे साधारण उपासकों जैसा कृषि और वाणिज्य में भाग नहीं ले सकते थे। इससे स्त्रियों की दशा पर भी प्रकाश पड़ता है। विनय-पिटक के नियमों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भिक्षु और भिक्षुणियों का संबंध विभिन्न पेशों में लगे रहने वाले

लोगों से कैसा था और आपस में ये किस प्रकार का रिश्ता रखते थे। अभिधम्मपिटक में सामाजिक गतिविधियों का आभास मिलता है।

लंका के पालि भाषा में रचित महावश और दीपवंश ऐसे महाकाव्य हैं जिनसे भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति पर नवीन प्रकाश पड़ता है। मिलिन्दपन्हो नामक पालि भाषा में लिखा गया ग्रन्थ मिनान्डर नामक यूनानी शासक के अतिरिक्त तत्कालीन समाज और धर्म पर समुचित प्रकाश डालता है। महावस्तु, ललितविस्तर और बुद्धचरितम् जैसे ग्रंथों में समसामयिक समाज और धर्म का सुन्दर चित्रण हुआ है। संस्कृत में लिखित 'दिव्यावदान' से मौर्य साम्राज्य के इतिहास के साथ-साथ अनेक राजवंशों का इतिहास तथा तत्कालीन जीवन भी चित्रित होता है।

प्राचीन भारत के सामाजिक-आर्थिक इतिहास में जैन साहित्य का भी अभूतपूर्व योगदान है। जैनाचार्यो द्वारा लिखित ग्रंथ केवल जैन आचार और धर्म पर ही प्रकाश नहीं डालते बल्कि तत्कालीन समाज और अर्थ का भी चित्र अंकित करते हैं। जैन धर्म ने वर्णव्यवस्था और वैदिक कर्मकाण्डों की बुराइयों को रोकने का बड़ा प्रयास किया। जैनों ने ब्राह्मणों द्वारा सम्बोधित संस्कृत भाषा को त्याग कर अपने धर्मोपदेश के लिए प्राकृत भाषा को अपनाया। उनके धार्मिक ग्रंथ अर्द्धभागधी भाषा में लिखे गये। जैन धर्म की शिक्षायें आगम नामक धर्मग्रंथों में पायी जाती है। इनमें 'कल्पसूत्र', 'भगवती सूत्र' आदि प्रधान आगम है और उन्हें ई0पू0 छठी सदी के आसपास रखा जाता है। इनसे प्राचीन वर्णव्यवस्था, नगर और आर्थिक गतिविधियों का पता चलता है। उस समय कितने प्रकार की शहरी और देहाती बस्तियाँ होती थीं इस बात का भी पता चलता है।

पुरातात्विक स्त्रोत :

पुरातत्व की सामग्री से भी प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। साधारणतः इसके चार विभाग किये जा सकते है - (1) खुदाई से निकली सामग्री, (2) उत्कीर्ण लेख, (3) मुद्रायें या सिक्के, (4) स्मारक (मूर्तियाँ, मंदिर, भवन, दुर्ग) आदि।

खुदाई से निकली सामग्री :

ऐतिहासिक स्थानों पर जो भी खुदाई होती है, उसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ मिलती है जिनमें ईट, औजार, हथियार, बर्तन, आभूषण, अनाज के दाने आदि सम्मिलित होते हैं। लगभग 600 ई0पू0 से उत्तर भारत में इतिहास युगीन पुरातत्व प्रारम्भ होता है। कालक्रम से इसकी पहली पहचान उत्तरी काले पालिशदार बर्तन है जिन्हें अंग्रेजी में नॉर्दर्न ब्लैक पालिस्ड वेयर अर्थात् एन0बी0पी0डब्ल्यू0 के नाम से पुकारा जाता है। उत्तर प्रदेश में ये पात्र अहिच्छत्र, मथुरा, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, सारनाथ, भींटा, श्रावस्ती तथा अतरंजीखेड़ा से अधिक प्राप्त हुए है। इनके अतिरिक्त बिहार (पटना, राजगिरि, वैशाली, गिरियाक) मध्य प्रदेश (प्रकाश, बहल, नासिक, नेवासा, कौडन्यपुर), बंगाल (चन्द्रकेतुगढ़) तथा आंध्र प्रदेश (अमरावती) से भी एन0बी0पी0 वेयर की उपलब्धि हुई है।[9] इनकी तिथि लगभग 600 ई0पू0[10] से 200 ई0पू0 के मध्य निर्धारित की गई है। ये बर्तन सुन्दर मिट्टी द्वारा तेज चलाये गये चाक पर निर्मित किये गये है। इन्हें तेज आँच में पकाया गया है।[11]

ऐसा प्रतीत होता है कि इनका मूल स्थान गंगा के मैदान का मध्य माना था. जहाँ से ये अत्यधिक संख्या में उपलब्ध हुए है। व्यापार के द्वारा यह तक्षशिला तथा

उज्जैन तक पहुँचा।[12] दक्षिण में यह कृष्णा नदी पर स्थित अमरावती से प्राप्त हुआ है। यह लम्बी यात्रा मौर्य साम्राज्यवाद के कारण सम्भव हुई होगी।[13]

उत्तरी काले पालिशदार बर्तन के साथ लोहे के बहुत से औजार भी मिलते है जो भौतिक परिवर्तनों के विषय में जानकारी प्रस्तुत करते हैं। उत्तर में पेशावर और तक्षशिला से दक्षिण में अमरावती से, पूरब में वानगढ़ और शिशुपालगढ़ से तथा पश्चिम में नासिक तक ऐसे मृद्माण्ड मिले है जो लौह युग के परिचांयक हैं। तक्षशिला[14] से प्राप्त लौह उपकरणों में भाला, बढ़इयों द्वारा प्रयुक्त बसूला तथा एक उन्नतोदर पृष्ठ भाग वाली छुरी प्राप्त हुई है जिसका किनारा ऋजु है। हस्तिनापुर से एक कटीला साकेट-युक्त बाणाग्र, छेनी तथा ब्लेड वाला हँसिया प्राप्त हुआ है। कौशाम्बी[15] के सांस्कृतिक काल[16] से उत्तरी काले पालिशदार मृद्माण्डों के स्तर में लौह उपकरणों की अधिकता दिखाई पड़ती है। रुपर[17] से कीलें, हुक, छड़ें, साकेटयुक्त बड़ी कीलें, मूठ, छुरे, हँसिए तथा भालों के अग्रभाग प्राप्त होते हैं। नालंदा[18] से प्राप्त उपकरणों में छुरे, भाले, छेनियाँ, ब्लेडयुक्त फुलावदार हँसिये, चौकोर आयताकार तथा षट्कोणीय बाणाग्र, दो धार वाले भाले, कुदार, कीलें तथा प्यालियाँ सम्मिलित हैं। बहल[19] से भालों के अग्रभाग छुरियाँ, भाले तथा छेनियाँ प्राप्त हुई हैं। बिहार[20] में सोनपुर से कीलें तथा ब्लेड प्राप्त हुए हैं। उपर्युक्त उपकरणों में हल, हँसिये, हुक तथा गड़ासे की उपस्थिति से इस बात का आभास मिलता है कि प्रस्तुत काल में लोहा कृषि तथा उत्पादन के क्षेत्र में पदार्पण कर चुका था।

लोहे की विभिन्न उपकरणों का रूप देने में धौंकनी[21] का प्रयोग महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ होगा।[22] इस संदर्भ में उज्जैन के उत्तरी काले पालिशदार बर्तनों के स्तर से

प्राप्त लोहार की भट्टी भी उल्लेखनीय है।[23] भट्टी तथा धौंकनी की सहायता से लोहे को गलाकर उपयोगी उपकरणों का रूप देने में सरलता होने लगी रही होगी।

उत्कीर्ण लेख :

उत्कीर्ण लेखों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है- (1) शिला लेख, (2) स्तम्भ लेख (3) गुहा लेख और (4) ताम्र लेख। इन प्रस्तरों, दीवारों, गुहाओं, स्तम्भों, ताम्र-पत्रों, प्रतिमाओं, मुद्राओं आदि पर खुदे हुए लेखों से प्रामाणिक इतिहास का निर्माण होता है। ऐसे अनेक लेख प्राप्त हुए हैं जिनसे तत्कालीन भारतीय समाज और संस्कृति का दिग्दर्शन होता है, पढ़े गये सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के है जो कि भारत के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। प्रस्तुत काल में अशोक के अभिलेखों की एक श्रृंखला प्राप्त होती है, जिसमें से अधिकांश गिरनार, कालसी सम्मिनदेई, शाहबाजगढ़ी, मानसेहरा, रामपुरवा तथा निगाली सागर आदि स्थलों से प्राप्त होते है।[24ए] ये अभिलेख प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में लिखे गये हैं। अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी आरमाइक और ग्रीक लिपियों में भी लिखे गये हैं। अशोक के सभी अभिलेख राजकीय है जो राजाज्ञा के रूप में जनता के लिए की गयी घोषणाएँ है। अशोक के अभिलेख सामाजिक, राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। ''अशोक के अभिलेखों में जोर दिया गया है कि लोग माता-पिता, श्रमणों, ब्राह्मणों का आदर करें और दासों तथा मृतकों पर ध्यान रखें। यह भी बतलाया गया है कि एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के धार्मिक विश्वास और रीति-रिवाज का आदर करें, अशोक ने सभी धर्मो की सार शिक्षाओं पर जोर दिया है। इस प्रकार से धार्मिक समवाय अथवा सौहार्द स्थापित करने की चेष्टा की गयी

महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। आर्थिक सामग्री नगण्य है लेकिन लुम्बिनी के लेख में यह कहा गया है कि गौतम बुद्ध का जन्म स्थान होने के कारण यहाँ का राजकीय कर घटाकर उपज का आठवाँ हिस्सा कर दिया गया। इससे यह सम्भावना बनती है कि उसके साम्राज्य में उपज का चौथा या छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। अशोक द्वारा देश के विभिन्न भागों में खुदवाये गये विभिन्न अभिलेख उसके समय के विकसित मार्गो का परिचय कराते है। अशोक के स्तम्भ मिर्जापुर की चुनार की पहाड़ियों से पत्थर काटकर बनाये गये थे तथा विशाल गाड़ियों पर रखकर दूरवर्ती स्थानों तक ले जाये और खड़े किये गये थे जो कि उक्त युग की परिवहन व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं।

अशोक के बाद हमें अनेक प्रशस्तियाँ मिलने लगती है, जिनमें दरबारी कवियों अथवा लेखकों द्वारा अपने आश्रय-दाताओं की प्रशंसा के शब्द मिलते है, यद्यपि कि ये अतिरंजित हैं फिर भी इनसे संबंधित शासकों के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है। इनमें सर्वप्रथम कलिंग राजा खारवेल के 'हाथीगुम्फा अभिलेख' का नाम लिया जा सकता है। यह अभिलेख ई0पू0 पहली सदी का है और इसमें खारवेल के राज्यकाल की घटनाओं का उल्लेख है। इसमें ग्रामीण एवं शहरी लोगों के सम्बन्धों, सामाजिक जानकारी के साथ-साथ कलिंग नगर में नहर बनाने की भी चर्चा है । दूसरी शताब्दी ई0पू0 का रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख भी सिंचाई व्यवस्था के बारे में सूचना देता है। इसे शुद्ध प्रशस्ति नहीं माना जाता है।

मौर्योत्तर काल में दो प्रकार के अभिलेख प्राप्त होते है - निजी और सरकारी। निजी अभिलेखों के अंतर्गत मुख्यरूप से दानपत्रों को रखा जा सकता है जिनमें दानदाता-दानग्राही का परिचय और दान की गयी वस्तु का वर्णन होता है। ऐसे

अभिलेख गया, साँची, भारहुत, नासिक तथा मथुरा के इलाके से प्राप्त हुए हैं। इनमें शिल्पियों और सौदागरों के नाम हैं, जिन्होंने बौद्धों और जैनों को दान दिया। अभिलेखों में दान की कीमत कार्षापण में बताई गयी है। जिससे पता चलता है कि मौर्योत्तर काल में मुद्रा का प्रचलन बड़े पैमाने पर हो गया था। सातवाहन रानी नायनिका के नासिक गुफा अभिलेख में यज्ञ में दी गयी विभिन्न दक्षिणाओं की रकम को जोडा जाये तो वे कुल मिलाकर डेढ़ लाख कार्षापण के बराबर होती है।[25] कल्याण सोपारा धेनुकाटक इत्यादि नगरों के सौदागरों और कामगारों का नाम दान के सदर्भ में आता है।

सातवाहन अभिलेख न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि इनसे सामाजिक व्यवस्था के बारे में भी महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। सातवाहन अभिलेखों में राजा की माता का नाम दिया हुआ है और वह राजा के नाम का अंग बना हुआ है। हमें गौतमी पुत्र सातकर्णि, वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी के नाम अभिलेखों में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त नासिक गुफा अभिलेख में रानी नयनिका द्वारा किये हुए विभिन्न यज्ञों की चर्चा है। इस प्रकार सातवाहन अभिलेखों से पता चलता है कि सातवाहन शासक वर्ग के समाज में मातृसत्ता का भी जोर था। यह इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि ब्राह्मणवादी ग्रंथों में पितृसत्ता पर जोर दिया जाता है और सातवाहन अभिलेख में गौतमी पुत्र सातकर्णि को 'एकबम्भन' (ब्राह्मण) बतलाया भी गया है।[25ए] उसने ब्राह्मण धर्म का पालन करते हुए अभिलेख में दावा किया है कि ''वह केवल क्षत्रियों के दर्प एवं मान का मर्दन ही नहीं किया बल्कि चारों वर्णों के मिश्रण के कारण जो वर्ण संकट की अवस्था पैदा हुई थी उसका भी अंत किया।[26] इस प्रकार सातवाहन अभिलेख तत्कालीन समाज एवं स्त्रियों की स्थिति पर महत्वपूर्ण

प्रकाश डालते है। सातवाहन के काल में एक नये प्रकार के राजकीय अभिलेखों की प्रथा प्रारम्भ होती है जिन्हें अनुदान सम्बन्धी शासन या सनद कहा जाता है। इस प्रकार के अभिलेखों में राज्य द्वारा लगाये गये करों का उल्लेख है। ये कर राजा प्रजा से वसूल करते थे। इन अभिलेखों से सामाजार्थिक महत्व की सामग्री प्राप्त होती है।

दूसरी शताब्दी ई0 का रुद्रदामन का गिरनार अभिलेख तत्कालीन आर्थिक अवस्था पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। संस्कृत अभिलेखों में सर्वाधिक प्राचीन यह अभिलेख रुद्रदामन के वंश, विजय, व्यक्तित्व और शासन पर प्रकाश डालते हुए सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार का सुन्दर वर्णन करता है।[27] इससे उस काल की सिंचाई व्यवस्था का ज्ञान होता है।

संस्कृत प्रभावित प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ हेलियोडोरस का बेसनगर गरुड़ स्तम्भ अभिलेख मध्य प्रदेश के विदिशा नामक स्थान पर प्राप्त हुआ है। अभिलेख का मुख्य विषय यूनानी राजदूत हेलियोडोरस द्वारा विदिशा में विष्णु की पूजा के लिए गरुड़ध्वज स्थापित कराना है। यह अभिलेख राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार समय निर्धारण की दृष्टि से अभिलेखों का महत्व अधिक है। जिन अभिलेखों में किसी संवत की चर्चा नहीं है उनकी लिपि के विकासक्रम को देखकर समय निश्चित किया जा सकता है, पर प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों का समय निर्धारण बड़ा कठिन है जिसके कारण समाज और अर्थव्यवस्था के विकासक्रम को समझने में कठिनाई होती है।

मुद्रा :

प्राचीन भारत के सामाजिक-आर्थिक इतिहास को समझने में मुद्राओं का भी अभूतपूर्व योगदान है। इन मुद्राओं से तत्कालीन शासक और उसका समय तो ज्ञात होता ही है, साथ ही भाषा, लिपि, धर्म, समाज और आर्थिक दशा का ज्ञान भी प्राप्त होता है। धातु के बने सिक्के का प्रचलन लगभग 500 ई0पू0 से प्रारम्भ हुआ।[28] इन्हें आहत सिक्के की संज्ञा दी गयी है और अधिकांशतः ये चाँदी के बने होते थे। ये सिक्के मौर्यकाल के पहले और बाद में लगभग 100 ई0पू0 तक पाये गये हैं। इन सिक्कों ने व्यापार तथा वाणिज्य सम्बन्धी विनिमय के लिए विशेष सुविधा प्रदान की होगी। आहत सिक्कों का भारी भण्डार मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थान तथा आध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के अमरावती नामक स्थान से मिले हैं।

सिक्कों में कुषाण राजाओं द्वारा चलाये गये सोने के सिक्के आर्थिक प्रगति के नवीन चरण की ओर संकेत करते हैं। कुषाण सिक्के अहिच्छत्र[30], पाटलिपुत्र[31], कुम्रहार[32], वैशाली[33], सोहगौरा[34], मैसन[35], तथा अतरजीखेड़ा से प्राप्त होते हैं। इस संदर्भ में भीटा से प्राप्त सिक्कों के साँचे भी महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न राजवंशों द्वारा चलाये गये सिक्कों की पहचान निश्चित रूप से हो जाती है। उन पर हिन्द-ग्रीक, शक, कुषाण, सातवाहन आदि राजाओं का नाम लिखा रहता है। कुछ सातवाहन सिक्कों में जहाज की आकृति मिलती है जिससे सामुद्रिक व्यापार होने का बोध होता है। ई0पू0 लगभग 200 से 300 ई0 सन् के बीच बहुत से नगरों ने भी अपने-अपने सिक्के चलाये। प्राचीन काल में सिक्के सोने, चाँदी, कांसे, तांबे, पोटीन और लेड के बने होते थे। सिक्के बतलाते है कि मौर्योत्तर काल और गुप्त काल के प्रारम्भ तक व्यापार जोर से चलता रहा और नगरों की समृद्धि बनी रही।

स्मारक या पुरावशेषः

विभिन्न प्रकार के भवन, राजप्रासाद, सार्वजनिक भवन, साधारण मकान, दुर्ग चैत्य, स्तूप, संघाराम बिहार आदि स्मारक के अंतर्गत आते हैं। हिन्दू, जैन, बौद्ध धर्म की प्रतिमाएँ भी निर्मित की जाती थीं जो उपयुक्त भवनों या धार्मिक केन्द्रों में स्थापित की जाती थीं। नगरों एवं भवनों के अवशेष तक्षशिला[37], शिशुपालगढ़[38], कौशाम्बी[39], अहिच्छत्र[40], एरण[41], उज्जैन[42], राजघाट[43], राजगिरि[44] तथा श्रावस्ती[45] से प्राप्त हुए हैं। लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से तृतीय-चतुर्थ शताब्दी ई0 तक के नगरों के ध्वंसावशेष राजस्थान के नोह[46], उ0प्र0 के हस्तिनापुर[47], अतरंजीखेड़ा[48], सोंख (मथुरा)[49], पिपरहवा[50], मैसन (गाजीपुर)[51], बिहार के चिराँद[52], वैशाली तथा गंगा के दक्षिण में कुम्रहार[53] तथा उड़ीसा में शिशुपालगढ़[54], कौशाम्बी[55] तथा राजघाट[56] आदि से प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त स्थलों से उत्खनन में प्राप्त लोहे के विभिन्न उपकरण तथा औज़ार, मिट्टी की मूर्तियां तथा बर्तन उपयोगी तथ्यों की ओर संकेत करते हैं। मिट्टी के बर्तनों में 'रेड वेयर' को विशेष रूप से सातवाहन-कुषाण काल से संबंधित किया गया है।

विदेशी लेखकों के विवरण :

साहित्यिक और पुरातात्विक स्त्रोतों के अतिरिक्त हमने विदेशी लेखकों के विवरण को भी अपने शोध ग्रंथ का आधार बनाया। ये विदेशी विवरण अनुपूरक सामग्री के रूप में प्रयोग किये गये है। भारत के सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में विदेशी लेखकों ने अपने शहर के यात्रियों और व्यापारियों के माध्यम से जानकारी प्राप्त की और उसे लिपिबद्ध किया। इसके अलावा कुछ ऐसे भी

विदेशी लेखक थे जिन्होंने भारत की यात्रा स्वयं की। कुछ भारतीय धर्म को अपनाकर इसे समझने के लिए यहाँ आये कुछ विदेशी महान सिकन्दर के साथ आये और कुछ उसके बाद दूत बनकर आये।

सामाजार्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक मेगास्थनीज की 'इण्डिका' है। वह एक यूनानी राजदूत था जो चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। मेगास्थनीज की लिखी पुस्तक 'इण्डिका' अब उपलब्ध नहीं है। यूनान और रोम के लेखकों ने 'इण्डिका' के आधार पर अपने वर्णन लिखे। लेकिन इन लेखकों के वर्णन में कुछ कमियाँ भी हैं। वे भारतीय भाषायें नहीं जानते थे और भारतीय संस्थाओं और रीति-रिवाजों की उन्हें जानकारी नहीं थी। जो तथ्य उन्होंने अपने आँखों से देखे थे वे प्रायः पूर्णतया विश्वसनीय है, किन्तु उन्होंने जो सुनी हुई बातों के आधार पर लिखा या अनुमान किया वह विश्वसनीय नहीं है जैसे मेगास्थनीज ने लिखा है कि भारत में दास प्रथा नहीं है या भारत में सात जातियाँ है।[57] इसके अतिरिक्त कुछ अतिरंजनों के बावजूद भी समाज के वास्तविक रूप का पता चलता है। इण्डिका में पाटलिपुत्र नगर के आर्थिक एवं प्रशासनिक संगठन का वर्णन मिलता है।

पहली और दूसरी शताब्दी ई0 के ग्रंथों में 'पेरिप्लस ऑफ द इरिथियन सी' का स्थान महत्वपूर्ण है। यह एक अज्ञातनामा यूनानी द्वारा लिखित है। उसने अपने वर्णन में भारतीय बंदरगाहों[58] के नाम तथा इनसे आयात-निर्यात की जाने वाली वस्तुओं[59] के नाम लिखे है। टालमी ने भारत का भौगोलिक वर्णन लिखा। उसकी पुस्तक 'ज्योग्राफी' यूनानी भाषा में लिखित है। ज्योग्राफी के लेखक ने छः प्रकार की शहरी बस्तियाँ होने की चर्चा की है। कुल मिलाकर इनकी संख्या 41 है।[60] अधिकांश शहर व्यापारिक मार्ग पर बसे थे और वाणिज्य के केन्द्र थे। इसमें बन्दरगाहों की भी चर्चा प्राप्त होती है।[61] प्लिनी ने पहली शती ई0 में 'नेचुरल हिस्टोरिका' लिखा जिससे

भारत रोम सम्बन्धों के बारे में पता चलता है। प्लिनी के अनुसार बैक्ट्रियासे आक़्सस नदी और कैस्पियन सागर में होकर भारतीय वस्तुएँ पूर्वी यूरोप पहुँचती थी।[62] प्लिनी के अनुसार भारत रोम संबंध में व्यापार भारतीयों के पक्ष में था। प्लिनी ने भारतीय पशु-पक्षियों, खनिजों, पौधों आदि पर अपना विवरण तैयार किया। इसके अतिरिक्त प्लूटार्क, कर्टियस, जस्टिन और स्ट्रैबो के भारत सम्बन्धी विवरण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इस प्रकार विदेशी लेखकों के वृतांत अतिरंजन एवं कुछ पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के बावजूद सामाजार्थिक इतिहास निर्माण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

****

1. मनु0, 10, 11-13, 18-45.

2. जातक, 3, पृ0 233.

3. शर्मा रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,पृ0 31.

5. वही, पृ0 32.

6. बौधायन धर्मसूत्र, 1.10, 18.19.

7. शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,पृ0 32.

8. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 1; 2.

9. डी0एम0 बोस, एस0एन0 सेन तथा बी0वी0 सुब्बारावप्पा द्वारा सम्पादित, ए कन्साइज हिस्ट्री ऑव साइन्स इन इण्डिया, पृ0 297.

10. जी0आर0 शर्मा, एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी 1957-59, पृ0 23.

11. वही,

12. ए0 घोष, द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, पृ0 14-15, कृष्णकान्ति गोपाल, पूर्व ऐतिहासिक काल में भारत में नगर, पृ088.

13. वही।

14. मार्शल, तक्षशिला 2, 1951, पृ0 63.

15. बी0बी0 लाल एक्सकैवेशन्स ऐट हस्तिनापुर एण्ड अदर एक्सप्लोरशन्स।

16. जी0आर0 शर्मा, द एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी, 1960, पृ0 45.

17. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1953-54, पृ0 6-7, 1954-55, पृ09.

वाई0डी0 शर्मा, एक्सप्लोरेन्शन ऑव हिस्टारिकल साइट्स, ऐश्येन्ट इण्डिया नं0 9; पृ0 125.

18. वी0एन0 मिश्रा तथा एम0एस0 माटे द्वारा सम्पादित, इण्डियन प्री हिस्ट्री, 1964, पृ0 196.

19. इण्डियन आर्कियालाजिकल रिव्यू, 1936-37, पृ0 19.

20. वही.

21. अष्टाध्यायी, 7, 3, 47, उवासगदसाओ (ए0एफ0 रूडौल्फ द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, 1990), पृ0 108.

22. आर0एस0 शर्मा, लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी एण्ड इकानॉमी, पृ0 60.

23. बी0ए0 मिश्रा तथा एम0एस0 माटे द्वारा सम्पादित, इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 64, पृ0 197.

24ए. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिपसन्स, पृ0 16-79.

24बी. शर्मा आर0एस0, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ0 26.

25. वही।

25ए. गौतमी बलश्री, (वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावि के 19वें वर्ष) का नासिक गुहालेख, पंक्ति 7वाँ.

26. वही, 8 पंक्ति छठवीं (विनिवतित-चातूवण संकरस)

27. रुद्रदामन का गिरनार (जूनागढ़) अभिलेख पंक्ति - 8वीं , 9वीं पंक्ति.

28. शर्मा, आर0एस0 - प्रारभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ0 24-25, ए0 घोष, द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इंडिया, पृ0 13-14.

29. वही।

30. ऐंश्येंट इण्डिया, न0-5, पृ0 97.

31. इंडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1955-56, पृ0 237.

32. रिपोर्ट्स ऑन कुम्रहार एक्सकैवेशन्स 1951-55, पृ0 20.

33. इंडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1958-59, पृ0 12.

34. इंडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1961-62, पृ0 56.

35. बुलेटिन ऑफ म्यूजियम्स इन आर्कियालॉजी इन यू0पी0, नं0-1, पृ0 31.

इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1964-65 (मैनस्क्रिप्ट कॉपी), पृ0 77,

36. ऐंश्येंट इंडिया, नं0 1, पृ0 39.

37. जॉन मार्शल, तक्षशिला, 1, पृ0 92.

38. बी0बी0 लाल, "शिशुपालगढ़ 1948 : ऐन अर्ली हिस्टारिकल फोर्ट इन ईस्टर्न इण्डिया,", ऐंश्येंट इंडिया, 5, 1949, पृ0 62-105.

39. जी0आर0 शर्मा, एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी, 1957-59, पृ0 26-29.

40. ए0 घोष, द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इंडिया, पृ0 60.

41. के0डी0 बाजपेयी, सागर थ्रू द एजेज, सागर 1964, इंडियन आर्कियालॉजी 1961-62 : ए रिव्यू, 1961-62, पृ0 24.

42. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1956-57, पृ0 24.

एन0आर0 बनर्जी : द आयरन एज इन इण्डिया, पृ0 15-18.

43. डी0पी0 अग्रवाल : द कॉपर ब्राउन्ज एज इन इण्डिया, पृ0 103.

44. इंडियन आर्कियालॉजी, ए रिव्यू, 1961-62, पृ0 37.

45. के0के0 सिन्हा, एक्सकैवेशन्स एट श्रावस्ती, 1959; ए0 घोष, दि सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इण्डिया, पृ0 65.

46. इंडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1970-71, पृ0 31.

47. एंशिऐन्ट इंडिया, नं0 10-11,

48. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू; 1962-63, पृ0 34.

49. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू; 1970-71, पृ0 39.

50. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू; 1970-71, पृ0 37.

51. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू; 1964-65, पृ0 43.

52. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू; 1970-71, पृ0 7.

53. रिपोर्ट ऑन कुम्रहार एक्सकेवेशन्स, 1952-55, पृ0 16-18.

54. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1970-71, पृ0 30.

55. जी0आर0 शर्मा, एक्स कैवेशन्स एट कौशाम्बी 1957-59, पृ0 26-31.

56. इडियन आर्कियाली : ए रिव्यू, 1965-66, पृ0 100.

57. एरियन, इण्डिका 10, खण्ड 26.

58. पेरिप्लस 38, 47, 52, 53, 54, 60, 63, 74.

59. पेरिप्लस 14, 30, 36, 39, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 64, 49, 24, 28, 27, 40.

60. आर0एस0 शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास.

61. टालमी, खण्ड 81.

62. जी0एल0 आद्या, अर्ली इण्डियन इकोनॉमिक्स, पृ0 159.

अध्याय - द्वितीय

सामाजार्थिक परिवर्तन की राजनीतिक पृष्ठभूमि

किसी भी देश की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने में उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों एवं तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ठीक उसी प्रकार से छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर द्वितीय शताब्दी ई0 की राजनीतिक परिस्थितियों, तत्वों एवं घटनाओं ने भी उक्त युग की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में कार्य किया। हम प्रारम्भिक वैदिक काल की राजनीतिक परिस्थितियों को उनके भौतिक एव सामाजिक जीवन के संदर्भ से अलग रखकर नहीं देख सकते क्योंकि उनका जीवन बहुत हद तक खानाबदोश था और आर्थिक दृष्टि से वे मुख्यत: पशुपालन की अवस्था में थे। उनके सामाजिक तथा सैनिक संगठन पर पशुपालन का प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक गोष्ठ (गुहाल) में रहने वाले लोग एक गोत्र के हो गये। चूँकि गोधन जनजातीय युद्धों का मुख्य कारण हुआ करता था। इसलिए युद्ध के पर्याय के रूप में गविष्टि अर्थात गाय की खोज शब्द का चलन हुआ।[1] खानाबदोशी व्यवस्था होने के कारण उन्हें सदा अपने स्थान बदलते रहने पड़ते थे। इसी कारण उनके द्वारा स्थिर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था दे पाना कठिन था।[2] वैदिक काल के अंतिम चरण तक लोगों के मानस में प्रदेश[3] का महत्व प्रतिष्ठित हो गया था और नये सामाजिक ढाँचे का उदय हो रहा था। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्गों के लोग रहते थे जिनका उदय वैदिक जनजातियों के विघटन और अवैदिक जनों के वैदिक समाज में शामिल किये जाने के परिणमस्वरूप हुआ था।[4] उनके स्थायित्व तथा स्थापित राजव्यवस्था ने कर व्यवस्था को जन्म दिया।

छठी शताब्दी ई0पू0 तक जनों के संचरण और सन्निवेश का युग बीत चुका था और राज्य के संघटन में साजात्य की अपेक्षा देश तत्व अधिक महत्वशाली हो

गया था।[5] फलतः जनों का स्थान जनपदों ने ले लिया था जिनमें कुछ राजाधीन थे कुछ गणाधीन। राजाओं का पारस्परिक संघर्ष उतना ही तीव्र था जितना कि राजाधीन तथा गणाधीन जनपदों का। जैसा कि राजघाट (बनारस) तथा चिरांद (छपरा) के उत्खननों से प्रमाणित होता है, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में इन दिनों लोहे का व्यापक उपयोग होता था, इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रादेशिक राज्यों की स्थापना हुई जो सैनिक दृष्टि से भली-भांति सज्जित थे और जिनमें मुख्य भूमिका क्षत्रिय वर्ग ने निभाई।[6]

सामाजार्थिक परिवर्तन की राजनीतिक पृष्ठभूमि में जाने के लिए छठी शताब्दी ई0पू0 की राजनीतिक परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय से पता चलता है कि छठी शताब्दी ई0पू0 के प्रारम्भिक समय से ही सोलह महाजनपद[7] विद्यमान थे जो कि बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्य थे। ये सोलह महाजनपद इस प्रकार थे -

1. काशी
2. कोशल
3. अंग
4. मगध
5. वज्जि
6. मल्ल
7. चेदि

8. वत्स

9. कुरु.

10. पांचाल

11. मत्स्य

12. शूरसेन

13. अस्सक (अश्मक)

14. अवन्ति

15. गान्धार

16. कम्बोज

रीज डेविड्स पहला विद्वान था जिसने बुद्ध तथा बिम्बिसार के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला।[8] इसमें सबसे महत्वपूर्ण उत्तरी बिहार का वृजियन, कुसीनारा का मल्ल राज्य तथा पावा के मल्ल राज्य थे। छोटे गणतन्त्रों में हमें कपिलवस्तु के शाक्य, देवदह और रामगाम के कोलिय, सुम्सुमार पहाड़ियों के भग्ग (भर्ग) राज्य, अलकप्प के बुलि राज्य, केसपुत्र के कलामस और पिप्पलिवन के मोरिय राज्य के उल्लेख मिलते हैं।

तत्पश्चात् इन बड़े राज्यों में कोसल तथा मगध सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन चुके थे। बुद्ध के समय तक काशी कोसल के साम्राज्य का अंग बन चुकी थी। ऐसे ही बिम्बिसार के समय में अंग जनपद को आत्मसात कर लिया था। शाक्यगण कोसल की अधीनता स्वीकार करता था, फिर भी विड्डूभ ने उस पर सांघातिक

हमला किया और अजातशत्रु ने लिच्छवियों से संग्राम ठाना। इन घटनाओं में गणराज्यों का ह्रास, राजतंत्र का उत्कर्ष तथा मगध साम्राज्य का उत्कर्ष देखे जा सकते है।[9]

अतः स्पष्ट है कि इस काल में उत्तरी भारत में सार्वभौमिक सत्ता का पूर्णतया अभाव था। यह राजनीतिक विश्रृंखलता का युग था। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। कालान्तर से या तो सही गणतंत्र राजतंत्रों में परिवर्तित हो गये या इनको समाप्त करके अनेक राजतंत्रों ने इनके स्थान पर अपने को प्रतिष्ठित कर लिया। लगभग सभी गणतंत्र जनजातीय थे जिनका भारतीय समाज में सम्मिलन हुआ। उदाहरणार्थ, हिमालयपारीय जनजातियाँ उत्तरकुरू और उत्तरमद्र[10] जो वैराज्य शासन प्रणाली से शासित बतलाये गये है।[11] पौराणिक अनुश्रुतियों में गणों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। उनमें एक हजार क्षत्रियों वाले एक गण का उल्लेख है। जिसका प्रधान नाभाग था। पुराणों में नाभाग के वंशजों का कोई जिक्र नहीं मिलता। पाटिल का तर्क है कि चूँकि नाभाग गणतंत्री जनजाति थे इसलिए पुराणों ने उनकी वंशावली सुरक्षित रखने की चिंता नहीं की।[13] फिर भी यदि अशोक के एक अभिलेख[14] में आये एक उल्लेख से यह माना जाये कि इसमें नाभागों का ही जिक्र हुआ है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये दीर्घकाल तक गणतंत्री जनजाति के रूप में बने रहे।

अतः हमारा विचार है कि अनेक जनजातीय राजवंशों के स्थापित होने पर ब्राह्मणीय आदर्शों पर आधारित आनुवंशिक राजपद से मुक्ति और जनसाधारण को सभी अधिकारों से वंचित रखने वाली व्यवस्था से छुटकारा मिला होगा। व्यय साध्य एवं अंधविश्वास युक्त कर्मकाण्डों का अंत हुआ होगा, ज़िससे पशुधन को नष्ट होने से बचाया गया होगा क्योंकि बढ़ते हुए कृषि के महत्व में इनकी बहुत बड़ी उपयोगिता थी।

वैदिक युग में क्षत्रिय का स्थान दूसरा रहा है, किन्तु बौद्ध युग में उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया, अन्य वर्णों के साथ उसका उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है।[15] तत्कालीन समय सामाजिक संघर्ष श्रेष्ठता और विशिष्टता प्राप्त करने का था जिसमें क्षत्रिय वर्ग ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। बुद्ध ने ब्राह्मण अम्बष्ट से कहा, "क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन।[16] यह कथन इस बात का प्रमाण है कि क्षत्रिय अपने को उत्कृष्ट समझता था तथा प्रशासन एवं रचनात्मक कार्यों से अपने को सम्बद्ध करके समाज में उसने सर्वश्रेष्ठ स्थान बना लिया था। बौद्ध युग में वर्णों में निर्दिष्ट कर्म पर भी आघात किया गया।[17]

वैदिक भेंट उपहारादि पर क्षत्रियों ने आवश्यक कर के रूप में तथा ब्राह्मण ने यज्ञादि की दक्षिणा के रूप में इस पर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया।[18]

मगध राष्ट्र की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों के व्यवहार में एक प्रकार का लचीलापन था। यह गुण सरस्वती व दृषद्वती के तटवर्ती प्रदेशों के लोगों में नही था। इन प्रांतों में ब्राह्मण लोग व्रात्य वर्ग का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा लोग अपने महलों में शूद्र कन्याओं को भी स्थान दे देते थे। वैश्यों व यवनों को भी शासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। यही नहीं कभी-कभी नगर शोभिनी की सन्तान के कारण ऊँचे घरानों या पैतृक राजवंशों के शासकों को भी राज्य से निकाल दिया जाता रहा। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की भी पहुँच के अन्दर होता था।

प्राचीन भारतीय साहित्य से पता चलता है कि राजा क्षत्रिय वर्ण का होना चाहिए। राजन्य और क्षत्रिय शब्द पयार्यवाची हैं। धर्म सूत्रों और अर्थशास्त्र से लेकर

ब्राह्मण विचार धारा के सभी ग्रंथों में इस बात पर जोर दिया गया।[19] कौटिल्य के अनुसार धर्म प्रवर्तन के रूप में राजा चतुर्वर्ण व्यवस्था का रक्षक है।[20] शांतिपर्व में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जाति, धर्म या वर्ण धर्म का आधार: क्षात्रधर्म, अर्थात राज्य शक्ति है।[21] मनु की घोषणा है कि राज्य तभी तक फल-फूल सकता है जब तक वर्णो की शुद्धता कायम रहती है। यदि मिश्रित वर्णो के वर्ण शंकर लोग वर्णो को दूषित करेंगे तो राज्य अपने निवासियों सहित नष्ट हो जायेगा। शांतिपर्व में राजपद को वर्ण-व्यवस्था का रक्षक कहा गया है। इसमें राजा के विरूद्ध विद्रोह करने वाले के लिए वही दण्ड निहित किया गया है जो समाज व्यवस्था में गड़बड़ी फैलाने वाले के लिए निर्धारित किया गया है।[22]

फिर भी हमें जातकों एवं जैन, बौद्ध, ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते है जिन्होंने राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर सर्वोच्च सामाजिक वर्ण में दाखिला लिया। नंद[23] लोग, जिन्होंने शिशुनाग वंश से सिंहासन छीना था नीच कुल[24] के थे। पुराणों के अनुसार महापद्म या महापद्मपति[25] नंद वंश का प्रथम नन्द था जो शूद्र कन्या का पुत्र था (शूद्रागर्भोद्भव) जैन ग्रंथ परिशिष्टपर्वन[26] के अनुसार नन्द गणिका माँ तथा नाई पिता का पुत्र था। उक्त कथन की पुष्टि सिकन्दर के समकालीन मगध के शासकों की वंशावली से भी हो जाती है। इस राजकुमार की चर्चा करते हुए कर्टियस ने लिखा है कि "इसका पिता नाई था बेचारा अपनी रोजाना की कमाई से किसी तरह जीवन यापन करता था। लेकिन चूँकि देखने सुनने में काफी खूबसूरत था, इसलिए रानी उसे बहुत मानती थी। रानी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही वह राजा के समीप पहुँच गया ,और राजा का विश्वासपात्र बन गया। एक दिन उसने छल से राजा

की हत्या कर दी। अपने को राजकुमारों का अभिभावक घोषित करते हुए उसने राजा के सभी अधिकार अपने हाथ में कर लिये ....।''[27]

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन अनुश्रुतियों के अनुसार मयूरपालक का पुत्र था और इस प्रकार शूद्र की कोटि में था[28], पर मध्यकालीन अभिलेखों में वह सूर्यवंशी के रूप में महिमान्वित हुआ है।[29] प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने छः लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जस्टिन[30] के अनुसार समूचा भारत चन्द्रगुप्त के कब्जे में था।

जैसा कि आर0सी0 मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास' में लिखा है कि 'उत्तर- बिम्बिसार काल के राजनीतिक इतिहास की विशेषता यह रही है कि उस समय दो विरोधी अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी-शक्तियाँ साथ-साथ काम कर रही थीं अर्थात् एक ओर तो स्थानीय जनपदों के स्वायत्त शासन के प्रति प्रेम की और दूसरी ओर समूचे देश को एक राजतन्त्र के अधीन एकता के सूत्र में बांधने की भावना थी। पहला आदर्श मनु के शब्दों में इस प्रकार था - सर्वम् परवशम् सुखम्, सर्वम् आत्मवशम् सुखम्।'[31] दोनों ही विरोधी विचारधाराएँ घड़ी के पेंडुलम की भांति उत्तरोत्तर एक दूसरे का स्थान ग्रहण करती रहीं। भारतीय राजनीति में बाह्य आक्रमणों के भय का तत्व सदैव प्रभावशाली रहा है, परन्तु समूचे देश की एकता इस तत्व के कारण नहीं थी, वरन् ''जब पृथ्वी को बर्बर जातियों (म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना) ने भयभीत किया तो उसने चन्द्रगुप्त मौर्य की शरण ली। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य को प्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहा जाता है और निःसंदेह उसके राज्य की सीमायें आर्यावर्त की सीमाओं के पार फैली हुई थी।''

मौर्यकाल में राजनीतिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने वर्णसंकरता के उद्भव व विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया।[32] जनजातीय समुदायों को एक विशेष सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत रखने का प्रयास किया गया। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी मिश्रित जातियों का उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में आयोगव, अम्बष्ठ, क्षत्ता, चाण्डाल, मागध, वैदेहक, सूत, कुक्कुट, उग्र, निषाद, पुल्कस, वैण, कुशीलव तथा श्वपाक का उल्लेख हुआ है।[33] इनमें अधिकतर जातियाँ जनजातीय समुदायों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। व्यावसायिक, जनजातीय एवं विदेशी जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप इस काल में जातियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। पहली बार कौटिल्य ने ही वैश्यों और शूद्रों से गठित सेना को उसके संख्या बल के कारण महत्वपूर्ण माना।

न केवल शूद्र राजाओं के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं बल्कि ब्राह्मण राजाओं के भी उदाहरण प्राप्त हैं। जातकों में कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं के उदाहरण मौजूद है।[34] आगे चलकर मौर्योत्तर काल में हमें आंध्रों, शुंगों, कण्वों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 तक का काल राजनीतिक उथल-पुथल का काल था। विदेशी शासन स्थापित हुआ तो देशी शासक वर्ग की समाजार्थिक स्थिति में स्वयं ही ह्रास हो गया। विदेशी शासकों के अंतर्गत वे शासित के रूप में अपने विशेष अधिकार खो बैठे। इस संदर्भ में तत्कालीन साहित्य में प्राप्त शूद्र तथा म्लेच्छ शासकों के उल्लेख विचारणीय है। चूँकि इन शूद्र राजाओं का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 के मध्य प्राप्त नहीं

शासकों से तात्पर्य विदेशी शासकों से ही रहा होगा।[35] विदेशी शासकों को वृषल की संज्ञा मनु ने स्वयं प्रदान की है।[36]

मनु ने स्नातक के लिए शूद्र राज्य में निवास का निषेध प्रस्तुत किया है।[37] इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस काल में शूद्र शासक होते थे। ये प्राय: ग्रीक, शक, पार्थियन, कुषाण शासकों का निर्देश देते हैं जो बौद्ध धर्म और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और जिन्हें मनु ने ऐसा पतित क्षत्रिय बताया है, जो ब्राह्मणों से परामर्श न लेने और बताये गये वैदिक कृत्यों के संपादन में चूक के कारण शूद्रत्व की स्थिति में पहुँच गये थे।[38] कलियुग वर्णन के संदर्भ में भी शूद्र शासकों का प्रसंग प्राप्त होता है।[39]

मनु ने ब्राह्मणों के लिए क्षत्रियेतर राजाओं से दान लेने का निषेध किया है।[40] इस निषेध का निर्धारण करते समय सम्भवत: उनके मस्तिष्क में वृषलत्व को प्राप्त विदेशी क्षत्रिय राजाओं का ही चित्र रहा होगा। दान लेने के सम्बन्ध में मनु ने राजा को अत्यधिक निम्न श्रेणी प्रदान की है।[41] इसका कारण भी सम्भवत: विदेशी शासक रहे होंगे जो कभी-कभी ब्रह्म हत्या करने[42] और उनकी स्त्री तथा सम्पत्ति का हरण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाते थे। मिलिन्दप ; में भी वंश परम्परा से हीन राजा को सिंहासन के अयोग्य बताया गया है।[43]

ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशी शासकों का सहयोग पाकर कुछ शूद्रों ने शासन व्यवस्था में उच्च्व अधिकार प्राप्त कर लिये थे। मनु ने उस राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना प्रकट की है जहाँ शूद्र धर्मप्रवक्ता (न्यायाधीश) नियुक्त किया जाता था।[44]

महाभारत के शांतिपर्व में एक स्थल पर कहा गया है कि जो शूद्र दस्युओं के आक्रमण के समय लोगों की रक्षा करे वह विशेष सम्मान का पात्र हो जाता था।[45]

ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों के छिन जाने का प्रसंग भी उपलब्ध होता है उसका कारण सम्भवत: विदेशी शासक रहे होंगे जिन्हें रूढ़िवादिता में कोई आस्था नहीं थी। सम्पूर्ण जगत के म्लेच्छीभूत हो जाने की बात कई स्थलों पर कही गयी है।[46]

विदेशी शासकों के प्रभाव से रूढ़िवादी वर्णव्यवस्था में उलट फेर की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।[47] ब्राह्मण शूद्रों का कार्य करने लगे थे तथा शूद्र धनार्जन और क्षत्रिय धर्म से जीवन यापन करने लगे थे।[48] ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय, पिण्डोदक तथा भक्ष्याभक्ष्य का विचार छोड़ सब कुछ खाने पीने वाले हो गये थे।[49] वे जप करना छोड़ने लगे थे और शूद्र मंत्र परायण बनने का प्रयास कर रहे थे।[50] ब्राह्मण स्वयं के लिए निर्धारित कर्मो द्वारा जीवन यापन न कर अन्य वर्णो के कर्मो द्वारा जीविका चला रहे थे क्षत्रिय तथा वैश्यों की भी यही स्थिति दिखाई देती है।[51]

''वृषलों द्वारा सताये हुए ब्राह्मण अपने लिए कोई रक्षक न मिलने पर हाहाकार करते हुए पृथ्वी पर भटकने लगेंगे तथा अत्याचारियों से डरे हुए द्विज नदी, पर्वत आदि की शरण[52] हलांकि यह कलियुग वर्णन हमारे अधीतकाल के थोड़ा बाद का माना जाता है फिर भी इससे यह अनुमानित किया जा सकता है कि अधीतकाल में ही सामाजिक विपर्यय की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी और विदेशी आक्रमणों से सामाजार्थिक ढाँचे के डगमगा जाने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी जो कालान्तर में विशेष क्रियाशील हो उठी। रूढ़िवादी वर्णव्यवस्था के डगमगा जाने का जो यह चित्र उपस्थित होता है इसकी पृष्ठभूमि में विदेशी शासकों का हाथ था।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अन्योन्याश्रियता का सम्बन्ध पाया जाता है। इतिहास में ऐसे अनेक साक्ष्य मौजूद है जबकि व्यक्ति के सामाजिक उत्थान-पतन के साथ आर्थिक उत्थान-पतन होता है और आर्थिक उत्थान-पतन के साथ सामाजिक जैसा कि शूद्रों व श्रेष्ठियों के उदाहरण से स्पष्ट है। इसका एक सटीक उदाहरण रथकार है। बौद्ध ग्रंथों में रथकारों का उल्लेख चाण्डाल, पुक्कुस, निषाद, वेण आदि घृणित जातियों के साथ हुआ है; परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों में इनका स्थान अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पूर्ण था। प्रारम्भिक सूत्रों में रथकारों को उपनयन का अधिकार दिया गया है।[53] रथकार प्रारम्भ से ही द्विज थे तथा आर्य समूह से सम्बन्धित थे यह श्रौत सूत्रों तथा गृह्य सूत्रों से स्पष्ट है।[54] तीन-तीन उच्च वर्गो के समान ही रथकारों को श्रौत यज्ञों के सम्पादन का अधिकार था।[55] युद्ध तथा संघर्ष की समाप्ति के कारण अब रथों की आवश्यकता अपेक्षाकृत बहुत कम हो गयी थी। फलस्वरूप रथ बनाकर जीवन-निर्वाह करने वाले रथकारों की आर्थिक स्थिति गिरने लगी। इस आर्थिक गिरावट का प्रभाव रथकारों के सामाजिक स्तर पर भी पड़ा।

आर्थिक परिवर्तन की पृष्ठ भूमि में राज्य की नीतियों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मौर्य-पूर्व युग में ग्रामीण विस्तार और नगरीकरण में राज्य को क्या भूमि रही स्पष्ट रूप से नही कहा जा सकता लेकिन कुछ राज्यो द्वारा आहत सिक्के जारी किये गये।[57] शासको ने अन्य आर्थिक गतिविधियों में दिलचस्पी दिखायी जैसे जंगलो को साफ करना, भू-व्यवस्था के बारे में कानून बनाना और शिल्पियों का पर्यवेक्षण। ऐसी स्थिति में सम्बद्ध राज्य की राजधानियों को विशाल बाजार में विकसित होना ही था। साथ ही पुरोहित, योद्धाओं और सम्पन्न व्यापारियों के आडंबर पूर्ण जीवन की मांग पूरी करने के लिये सुदूर व्यापार भी जरूरी था।[58] नंदों ने अपने प्रशासन में व्यवस्थित

रूप से कर सग्रह के लिये नियमित अधिकारी नियुक्त किये थे। अतः राजकोष निरंतर भरता जाता था उनकी विशाल सेना के रखरखाव के लिये यह आवश्यक हो गया था।[59] नंदों ने नहरों का भी निर्माण कराया और सिचाई परियोजना को कार्यान्वित किया।[60]

मौर्य काल (लगभग 322ई0पू0-200ई0पू0) में राज्य की आर्थिक गतिविधियों में अभूतपूर्व विस्तार दिखायी देता है मौर्य अर्थव्यवस्था का विशिष्ट अभिलक्षण है कृषि, उद्योग तथा व्यापार पर राज्य का नियंत्रण और लोगों पर भी सभी प्रकार के करों का आरोपण। यह कई वजहों से आवश्यक हो उठा था। पहली वजह तो यह थी कि इससे पहले या बाद में प्राचीन भारत में किसी भी राज्य के पास इतनी विशाल सेना नहीं थी जितनी कि मौर्यो के पास थी।[61] जस्टिन तथा प्लूटार्क ने लिखा कि 'छः लाख सैनिकों की सहायता से मौर्य सम्राट ने सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला मेगास्थनीज ने मौर्य सेना की कुल संख्या चार लाख आंकी है। विशाल साम्राज्य के सभी खर्चो को पूरा करने के लिए सामान्य करों को पर्याप्त नहीं माना गया। इसलिए अनेक आर्थिक गतिविधियों को राज्य ने अपने हाथ में ले लिया और इन उद्यमों के लिए जरूरी हो गया कि एक विशाल बहुमुखी नौकरशाही हो। जिसमें लगभग तीस विभागों के अधीक्षक और अधीनस्थ कर्मचारी थे, इससे राजकोष पर बोझ और ज्यादा बढ़ गया जिसे आय के नये स्रोतों से पूरा करना था।[62] रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था जिसका पुनर्निर्माण वह स्वयं करवा रहा था।

इस युग के व्यापार एवं व्यवसाय में राजकीय हस्तक्षेप था।[63] राज्य अपने निरीक्षकों की सहायता से व्यापार करवाता था और राज्य ने विभिन्न व्यापारिक

कार्यो के लिए अलग-अलग अध्यक्ष नियुक्त करता था।[64] माप-तौल के लिए पौतवाध्यक्ष[65], जहाज तथा जल यातायात के लिए नौकाध्यक्ष, चुंगी अधिकारी को शुल्काध्यक्ष[66] धातुओं के अध्यक्ष को लौहाध्यक्ष[67], सिक्कों का निर्माण करने वाले अधिकारी को लक्षणाध्यक्ष[68], तैयार सिक्कों की जाँच करने वाले अधिकारी को रूपदर्शक[69], समुद्रों से खुदाई कराने वाले को खन्याध्यक्ष, नमक अधिकारी को लवणाध्यक्ष, कृषि कार्य देखने वाले को सीताध्यक्ष[70] और वस्त्रोद्योग देखने वाले को सूत्राध्यक्ष।[71] खानों के ऊपर राज्य का नियंत्रण होता था।[72] मौर्य युग में राज्य का बड़ा वाणिज्यिक अधिकारी पण्याध्यक्ष होता था, जिसका बाजार पर नियंत्रण होता था।[73] मदिरा निर्माण एवं व्यापार करने में भी राज्य का एकाधिकार था।[74] मौर्यो ने सड़कों का निर्माण करके तथा एकरूप शासन प्रणाली विकसित करने का प्रयत्न करके उपमहाद्वीप के व्यापार को प्रोत्साहित किया।

आर्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में कुछ राजनीतिक घटनाओं तथा परिस्थितियों ने भी अपनी भूमिका अदा की। लगभग 200 ई0पू0 से 300 ई0 का काल साम्राज्य के विघटन का काल माना गया है।[75] मौर्यकाल की समाप्ति के बाद भारत के राजनीतिक घटनाओं में विखराव आ गया। पश्चिमोत्तर भारत में अलैक्जैंडर का आक्रमण यूनान तथा भारत को किसी तात्विक दृष्टि से निकट लाने में असफल रहा था। यूनानियों और भारतीयों का पारस्परिक सम्पर्क बाद में दूसरी शताब्दी ई0पू0 में उन यूनानी राजाओं के माध्यम से बढ़ा, जिनका शासन पश्चिमोत्तर में था और इंडो-ग्रीक कहलाते थे।[76] सामान्यतः यह माना जाता है कि भारत पर यवनों का प्रथम आक्रमण पुण्यमित्र शुंग के समय में हुआ। इसका उल्लेख अनेक भारतीय ग्रंथों पतंजलि के भाष्य, गार्गी संहिता, मालविकाग्निमित्रम आदि में हुआ है। शुंग राजाओं के प्रबल

प्रतिरोध के कारण यूनानियों को पीछे हटना पड़ा, फिर भी उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त और पंजाब के कुछ भागों पर इनका शासन लगभग डेढ़ सौ वर्षो तक पहली शताब्दी के मध्यभाग तक बना रहा। भारत में यूनानियों का इतिहास उनके सिक्कों द्वारा ही ज्ञात होता है।[77] तक्षशिला से डेमेट्रियस प्रथम का तांबे का कम मूल्य का एक सिक्का मिला है और उसके पिता यूथीडेमस के तीन सिक्के मिले हैं। डेमेट्रियस प्रथम का सिक्का यूनानी नगर सिरकप से न मिलकर भीर के पुराने टील (मौर्यकाल) से मिला है। सम्भवत: वहाँ सिक्का व्यापार के द्वारा आया होगा।[78] यूनानी सिक्कों पर निरंतर खरोष्ठी लिपि की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि का अधिक अंकन होना यह प्रदर्शित करता है कि भारत में यूनानी व्यापारियों के कई व्यापारिक वर्ग थे। वाणिज्यिक सुविधा के लिए अमैथोक्लीज ने अपने सिक्कों पर खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपि को अंकित किया।[79] इस प्रकार मुद्रा के प्रसार ने व्यापार को बढ़ावा दिया।

मेनाण्डर के समय में भारत की ओर से व्यापार भारतीय जहाजों द्वारा होता था। इस समय भरूकच्छ पश्चिमी देशों के साथ व्यापार का बड़ा बंदरगाह था।[80] इस समय भारत और मिस्र के बीच भी व्यापार होता था। इस व्यापार में अरब बिचौलिये थे। बेबीलोन से प्राप्त सिक्के इस व्यापार में अरब बिचौलियों का होना सिद्ध करते हैं।[81] इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि यूनानी राज्य भारत में बहुत समय तक नहीं रहा, फिर भी आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण समय था।

यूनानियों के पश्चात् इस युग में भारत पर आक्रमण करने वाली दूसरी जाति शकों की थी। शकों ने प्रथम सदी ई0पू0 में उत्तर-पश्चिमी भारत में अपना आधिपत्य स्थापित किया शक नरेशों ने भारत के विस्तृत प्रदेश पर सीधे अथवा क्षत्रियों के माध्यम से ईसा की तीसरी शताब्दी तक राज्य किया। शक शासकों ने

सम्पूर्ण विदेशी व्यापार को कठोरता से नियंत्रित किया आंतरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशी व्यापार में शक-क्षत्रयों की आज्ञा से ही व्यापारिक जहाज फारस की खाड़ी की ओर आते थे। इसी सदी तक अरब पश्चिम के साथ व्यापार में बिचौलिया था। शकों ने न केवल समुद्री व्यापार को नियंत्रित किया अपितु उसे आवश्यक सुरक्षा भी प्रदान की।[82] इस काल में भरुकच्छ, सुप्पारक और कल्याण प्रभुत्व बंदरगाह थे, जिन पर आधिपत्य को लेकर शकों और सातवाहनों में संघर्ष हुआ।[83]

भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम में शकों के बाद कुषाण साम्राज्य का उदय हुआ जिस समय मध्यदेश में सातवाहनों और शकों का संघर्ष चल रहा था, उसी समय उत्तर भारत में कुषाण राज्य स्थापित हो रहा था।[84] कुषाण पश्चिम चीन में बसने वाली यू-ची नामक जाति की पाँच शाखाओं में से एक शाखा थी। प्रथम सदी ई0पू0 में इस जाति ने भारत में प्रवेश किया। इनके काल में व्यापारिक समुदायों की गतिविधियाँ और तीव्र हो गयी थी। कुषाण शासकों ने सोने के अत्यधिक सिक्के चलाये जो उनके समय के आर्थिक प्रगति की ओर संकेत करते हैं। इस काल में नगरीय जीवन समृद्ध और विकसित हो गया था, जिसकी पृष्ठभूमि में उत्पादन को नियोजित करने के कारण व्यापारियों एवं शिल्पकारों की श्रेणियाँ पहले ही अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण हो गयी थी। इस विषय पर विस्तार पूर्वक चर्चा आगे के अध्याय में 'नगरीकरण' के अंतर्गत व्यापार के संदर्भ में की जायेगी। कुषाणों ने स्वर्ण सिक्कों का प्रयोग सम्भवत: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में किया था इनके द्वारा चलाये गये सिक्के अहिच्छत्र[85], पाटलिपुत्र[86], कुमराहट (प्राचीन पाटलिपुत्र)[87], वैशाली[87], सोहगौरा[88], मैसन[89], तथा अतरंजीखेड़ा[90] से प्राप्त हुए हैं। कुषाण शासकों द्वारा चलाये गये सिक्के आर्थिक प्रगति के नवीन चरण की ओर संकेत करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर अभारतीयों का आधिपत्य वणिकों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ, क्योंकि इससे उन अंचलों के साथ व्यापार का अवसर मिला जो अब तक अछूते पड़े हुए थे। इंडो-यूनानी राजाओं ने पश्चिमी एशिया और भू-मध्य सागरीय ससार से सम्पर्क स्थापित करने को प्रोत्साहन दिया। शक, पार्थियन और कुषाण राजाओं ने भारतीय वणिकों के लिए मध्य एशिया के द्वार खोले जिसके फलस्वरूप चीन से भारत का व्यापार होने लगा। .... किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आर्थिक कार्य-कलाप केवल व्यापार तक सीमित थे अथवा कृषि की अवनति हो गयी थी। कृषि से अब भी राजस्व प्राप्त होता था किन्तु वाणिज्यिक कार्य कलापों की चहल पहल ने उन लोगों को महत्वपूर्ण बना दिया।, जिनका सम्बन्ध वाणिज्य से था।'[91]

अतः स्पष्ट है कि सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में राजनीतिक घटक भी महत्वपूर्ण रहे हैं।

****

1. आर0एस0 शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें, पृ0 333

2. ऋग्वेद, 9.112.3, एक स्थल पर ब्राह्मण ऋषि का कथन है कि "मै कारु (मंत्र-निर्माता) हूँ, मेरे पिता भिषक (वैद्य) और मेरी माता उपल प्रक्षिणी (पत्थर की चक्की से अनाज पीसने वाली) अपने भिन्न मत के होते हुए हम सब यह अनुसरण करते है।"

3. ऋग्वेद 6, 88, 2,

4. आर0एस0 शर्मा, 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें' पृ0 343

5. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 18

6. आर0एस0 शर्मा, 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं', पृ0 346,

7. महावस्तु (1, 34) में भी इसी प्रकार की लिस्ट दी गयी है, किन्तु उसमें गान्धार और कम्बोज का नाम न देकर शिबि और दशार्ण (पंजाब और राजपुताना) के नाम है। इसी प्रकार की एक अधूरी लिस्ट जनवसभ-सुत्तन्त में मिलती है।

8. रीज डेविड, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0-1

9. गोविन्द चन्द पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 18

10. बी0सी0ला, इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स ऑफ बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृ0 89त्र

11. ऐतरेय ब्राह्मण, आठवाँ, 14,

12. बी0सी0ला, पूर्वोद्धृत पुस्तक, पृ0 89, 93-96.

13. कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण, पृ0 53.

14. रॉक एडिक्ट (अशोक की राजाज्ञा), तेरहवाँ

15. चुल्लवग्ग, 9.1.4, मज्झिम निकाय, 2, पृ0 128; अंगुत्तर निकाय, 2, पृ0 194.

16. दीघ निकाय, 1, पृ0 98.

17. जातक 6, पृ0 208,

18. आर0 एस0 शर्मा, प्राचीन भारत में राजनितिक विचार एवं संस्थाएँ पृ0 218.

19. तुलनीय उपरिवत्, पृ0 61-82.

20. अर्थशास्त्र, तृतीय, प्रथम.

21. शांति पर्व 64, 1-2; तुलनीय 24-25 और 65-5-6.

22. शाति पर्व 86. 21. राज्ञोवधंचिकीर्षेद्यस्तस्य चित्रों वधो भवेत्, आजीवकस्य स्तनेस्य वर्णसंकरस्यच .

23. जैनियों के अनुसार उदायिन की मृत्यु के पश्चात् वर्धमान के निर्वाण के 60 वर्षो के पश्चात् नंद राजा घोषित किया गया (परिशिष्ट पर्वन्, छठा, 243)। नंद के इतिहास के लिए देखिए - "एज ऑफ द नन्दाज एण्ड मौर्याज, पृ0 9-26, एन0 शास्त्री, राय चौधरी तथा अन्य।

24. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 50

25. महापद्मपति अर्थात् अतुल धनराशि का स्वामी; विल्सन विष्णु पुराण, वाल्यूम नवाँ, नं0 184.

26. परिशिष्टपर्वन् पृ0 46; टेक्स्ट, छठा, 231-32.

27. कर्टियस, 172, एट पैजिम।

28. आर0एस0 शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ0 229-30.

29. मनु, छठा, 61; विष्णु स्मृति, इक्कीसवाँ, 64.

30. जस्टिन, चैप्टर द्वितीय, सी0एफ0. जर्नल, 1924, 666.

31. मनुसंहिता, चौथा, 160.

32. एवा एण्ड मैरिआ शीतलिश स्टडी एन जुम कौटिल्य अर्थशास्त्र, रिव्शल, ए रिव्यू बाई थियोडोर बर्गमैन, जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री, वाल्यूम 54, दिसम्बर 1976, पृ0 773.

33. अर्थशास्त्र, 3, 7.

34. बेनी प्रसाद, द स्टेट इन एंश्येंट इंडिया, पृ0 500.

35. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 187.

36. मनुस्मृति 10, 43-44, वृषलत्वंगता लोके .... न शूद्र राज्ये निवसेत्.

37. मनुस्मृति 4, 61.

38. मनुस्मृति, 10, 43-44.

39. इसका समय 200 ई0 से 275 ई0 निर्धारित किया गया है।

40. मनुस्मृति, 4, 84.

41. वही, 4, 86.

42. महाभारत, 3, 186, 44; 3, 188, 35 तथा 58, युगपुराण 95 और आगे।

43. मिलिन्दपन्हो, पृ0 358.

44 मनुस्मृति 8, 20-21.

45. ब्राह्मणों यदि वा वैश्य: शूद्रो वा राजसत्तम ।

दस्युभ्योऽथ प्रजा रक्षेद्दण्डं धर्मेण धारयन ।।

अपारे यो भवेत्पारमप्लवे य: प्लवो भवेत ।

शूद्रो वा यदि वाप्यन्य सर्वथा मानमर्हति ।।

महाभारत 12. 176. 23

46. महीम्लेच्छजनाकीर्णा भविष्यति ततोऽचिरात् ।

करभारमयाद्विप्रा भजिष्यन्ति दिशोदश ।।

महाभारत, 3, 188, 70.

47. रामकृष्ण द्विवेदी, ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द चेंजिंग सोशल आर्डर एट युगान्त ऑर द एण्ड ऑव कलिएज; डी0डी0 कोसम्बी कम्मेमोरेशन वाल्यूम, सम्पादक, लल्लन जी गोपाल, पृ0 282-284.

48. ब्राह्मणाः शूद्रकर्माणस्तथा शूद्र धनार्जकाः ।

    क्षत्रधर्मेण वाप्यत्र वर्तयन्ति गते युगे ।।

    महाभारत 3, 186, 26.

49. निवृत्तयज्ञस्वाध्यायाः पिण्डदक विवर्जिताः ।

    ब्राह्मणाः सर्वभक्षाश्च भविष्यन्ति कलौयुगे ।।

    महाभारत 3, 186, 27.

50. अजपा ब्राह्मणास्तात शूद्रा जपपरायणाः ।

    महाभारत 3, 186, 28.

51. महाभारत 3, 186, 31.

52. महाभारत 3, 188, 58 तथा 60.

53. बौधायन गृह्यसूत्र 2, 5, 6 तथा भारद्वाज गृह्यसूत्र.

54. रामगोपाल, इंडिया ऑव वैदिक कल्पसूत्राज, पृ0 117.

55. कात्यायन श्रौत सूत्र 1, 1, 9, 4, 7, 7, 4, 9, 3; बौधायन श्रौत सूत्र 24, 6, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र 5, 13, 18.

56. डॉ0 भारती राज, प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन, पृ0 76.

57. डी0सी0 सरकार (1961), 'द इश्यू ऑफ पंचमार्क क्वाइन्स जे0एन0एस0आई0, जिन्द 23, पृ0 298-99.

58. आर0एस0 शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ0 148.

59. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 50.

60. खारवेल का हाथी गुम्फा अभिलेख - नंदराज तिवस-सत ओघाटितम्.

61. आर0एसं0 शर्मा, उपर्युक्त, पृ0 151.

62. वही,

63. आर0के0 मुखर्जी चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स (वाराणसी 1966), पृ0 204.

64. आर0एस0 शर्मा, पूर्वकालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, पृ0 54-56.

65. आर0पी0 कांग्ले, दि कौटिल्य अर्थशास्त्र खण्ड-प्रथम, पृ0 96.

66. आर0पी0 कांग्ले, दि कौटिल्य अर्थशास्त्र खण्ड-प्रथम, पृ0 73.

67. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-12.

68. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-12.

69. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-12.

70. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-12.

71. आर0पी0 काग्ले, दि कौटिल्य अर्थशास्त्र खण्ड-प्रथम, पृ0 76.

72. आर0पी0 काग्ले, दि कौटिल्य अर्थशास्त्र खण्ड-प्रथम, पृ0 75.

73. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-12.

74. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, खण्ड-द्वितीय-25.

75. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 82.

76. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 83.

77. जार्ज वुडकांक, द ग्रीक्स इन इंडिया, (लंदन 1966), पृ0 76.

78. जार्ज वुडकांक, द ग्रीक्स इन इंडिया, (लंदन 1966), पृ0 82.

79. जार्ज वुडकांक, द ग्रीक्स इन इंडिया, (लंदन 1966), पृ0 88.

80. डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 टार्न, दि ग्रीक इन बक्टीरिया एण्ड इंडिया (कैम्ब्रिज : 1951), पृ0 260.

81. वही, पृ0 261.

82. ए0एन0 बोस, सोशल एण्ड रुरल इकानॉमी ऑव नार्दर्न इंडिया (कलकत्ता : 1945), पृ0 323.

83. एस0सी0 भट्टाचार्या, सम एस्पेक्ट ऑव इंडियन सोसायटी (कलकत्ता : 1978), पृ0 3.

84. मोतीचन्द सार्थवाह, पृ0 102.

85. ऐंश्यंट इंडिया, नं0-5, पृ0 97.

86. इडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1955-56, पृ0 237.

87. रिपोर्ट ऑन कुम्हरार एक्सकैवेशन्स, 1951-53, पृ0 70.

88. इडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1958:59, पृ0 12.

89. वही : ए रिव्यू 1961-62, पृ0 56.

90. बुलेटिन ऑफ म्यूजियम्स एण्ड आर्कियालॉजी इन यू0पी0, नं0-1. प0 37: इंडियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1964-65, पृ0 77,

91. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ0 98.

****

अध्याय - तृतीय

सामाजार्थिक परिवर्तन की वैचारिक, धार्मिक तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि

इस काल में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को दिशा देने वाले अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ। जो विभिन्न धार्मिक-आन्दोलनों एवं सम्प्रदायों के रूप में विकसित हुए। ये पूर्ववर्ती विचारधाराओं की प्रतिपक्षी परम्परा को प्रस्तुत करती है। इन परिवर्तनों के भौगोलिक क्षेत्र भी भिन्न थे। जैसे ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर ग्रंथों का ज्ञान अधिकांशतः गगा-जमुना की घाटी या पूर्वी भारत तक ही सुनिश्चित था, यद्यपि इनमें 'आर्यावर्त' की कल्पना भी मिलती है, जो कभी गंगा-जमुना दोआब तक तो कभी हिमालय से लेकर विन्ध्य और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के बीच के भाग तक विस्तृत कहा गया है। स्पष्टतः इनमें दो भिन्न संस्कृतियों के मूल्यों की स्थापना है - एक संस्कृति कुरू-पांचाल प्रदेश की यज्ञ एवं देवता प्रधान तथा पुरोहितों के वर्चस्व की पक्षधर थी, दूसरी संस्कृति गंगा की घाटी के क्षेत्र में पनपी नयी संस्कृति थी जो नगरीय जीवन के मूल्यों के अधिक निकट थी। लेकिन जिनमें कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों एवं ग्रामों का नवीन रूप उभरा था। दोनों में ही परस्पर भेद स्पष्ट होता है। इस युग के नवीन धार्मिक आन्दोलनों में भी वैदिक परम्पराओं के प्रतिपक्षी स्वरूप स्पष्ट होते है, जैसे अनीश्वरवाद, यज्ञों का विरोध, वेदों की महत्ता पर संदेह लोकधर्मो की पुष्टि आदि।

उपनिषदों से तथा प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रंथों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी ई0पू0 एक बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रांति का युग था जबकि ब्राह्मण और श्रमण आचार्य और भिक्षु अनेकों धार्मिक, दार्शनिक, मतों की उद्भावना और नाना नवीन मार्गो और सम्प्रदायों का प्रचार कर रहे थे।[1] परिव्राजकों का तत्कालीन समाज में महत्व इस व्यापक बौद्धिक आध्यात्मिक जिज्ञासा के कारण ही था। प्रचलित वैदिक परम्परा के अनुसार, मनुष्य यज्ञादि के अनुष्ठान से देवताओं के

प्रसाद और फलतः सुखी जीवन तथा स्वर्ग की आशा कर सकते हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी ई0पू0 के प्रायः सभी विचारक पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे और मृत्यु तथा क्षय से अनिवार्यतया ग्रस्थ लौकिक और पारलौकिक जीवन को एक दुःखमय विभीषिका मानते थे। भोग के स्थान पर मोक्ष चाहते थे। उनमें विचार और मतभेद इस बात पर था कि बन्धन और मोक्ष के कारण क्या है ? श्रमण परम्परायें कुछ सीमा तक वैदिक परम्परा के विरूद्ध भी थीं। इन नयी परम्पराओं में अनेक वादों का जन्म हुआ जैसे कर्मवाद, क्रियावाद, नियतिवाद, उच्छेदवाद, तपवाद, अज्ञानवाद आदि इससे सम्बन्धित विचार भी इस युग में प्रसिद्ध हुए।[2]

भौतिकवा :

कुछ विचारक पुनर्जन्म में आस्था नहीं रखते थे और आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति-रूप-मुक्ति की खोज को ही असंगत मानते थे। विभिन्न दुःखों के लिए विभिन्न दृष्ट उपाय उपलब्ध हैं। दुःख की अत्यन्त निवृत्ति के लिए मृत्यु की शरण में जाना होगा, किन्तु दुःख के भय से जीवन के नाना सुखों को त्याग नहीं करना चाहिए। मनुष्य चार भौतिक तत्वों के संयोग से बना है और चैतन्य उसका आगन्तुक धर्म है। इन महाभूतों के विसंयोग से मृत्यु हो जाती है जिसके बाद कोई परलोकादि शेष नहीं रह जाते। इस प्रकार के भौतिकवाद का संकेत छान्दोग्योपनिषद् के अष्टम् प्रपाठक में मिलता है, जहाँ असुरों का प्रतिनिधि विरोचन देहात्मवाद से सन्तुष्ट हो जाता है। गीता के 16वें अध्याय में आसुरी निष्ठा का वर्णन है।[3] श्वेताश्वतर में ब्रह्मवादियों के मौलिक प्रश्न - "अधिष्ठता केन सुखेतरेषुवर्तामिहे" को उत्थापित कर उत्तर में काल, स्वभाव, नियति यदृच्छा के साथ भतानि को भी जिज्ञासित कारण के रूप में अभिहित

किया गया है। बौद्ध ग्रंथों में 'उच्छेदवाद' का उल्लेख मिलता है जो कि मृत्यु का विनाश मानता था। सामन्जफल सुत्त में अजितकेशकम्बलि नाम के आचार्य का उच्छेदवाद उल्लिखित है। बौद्ध और जैन ग्रंथों में एक और भौतिकवादी विचारक पायासिपएसि का उल्लेख आता है, जो कि आत्मा और सत्ता को प्रत्यक्ष की कसौटी पर जाँचना चाहता था।[4] यह स्मरणीय है कि उत्तरकालीन चार्वाक अथवा लोकायत मत के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है।[5] पालिग्रंथों में लोकायतिक शब्द पाया जाता है, किन्तु अर्थ भिन्न प्रतीत होता है।[6] चतुर्थ शताब्दी के कौटलीय अर्थशास्त्र में लोकायत को अन्वीक्षिकी के अन्तर्गत माना है।[7] महाभारत में चार्वाक का उल्लेख मिलता है। रामायण में जाबालि का मत सदृश है।[8] पाणिनि आस्तिक, नास्तिक और दैष्टिक मतों की ओर संकेत करते है।[9] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि उपनिषद्काल से प्रारम्भ होकर चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 तक एक निश्चित भौतिकवादी एवं नास्तिक विचारधारा का उद्‌गम और प्रवाह हुआ था। यह विचारधारा प्रत्यक्षवादी थी और परलोक अथवा पुनर्जन्म को नहीं मानती थी। यह अनेक नामों से उल्लिखित है और वैदिक यज्ञादि कर्म का उतना ही विरोध करती थी जितना श्रमणों के निवृत्ति मार्ग का।

अज्ञानवाद :

संजय बेलडिपुत्त का कहना था कि परलोक, औपपातिक जीव, कर्म, मुक्ति के बाद की अवस्था इन सब विषयों का निश्चित ज्ञान असम्भव है और इनको अस्ति नास्ति आदि चारों कोटियों में नही रखा जा सकता। ब्रह्मजालसुतन्त में इस मत को अमरा विक्षेपकों का मत कहा गया है। सूयगडंग की व्याख्या में शीलांग का कहना है 'तत्र को वेत्तीतस्यार्थो न कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतिन्द्रीयान् जीवादीनवमोत्स्यते। न च तैज्ञातैः किंचित्फलमस्ति (सुय 1.2.16 पर)[10] यह स्मरणीय है कि संजय के कुछ

विषयों की चतुष्कोटिविनिर्मुक्तता का सिद्धान्त बौद्धों और जैनों दोनों के परवर्ती विचारों पर प्रकारान्तर से प्रभाव डाले बिना न रहा।[11]

कुछ विचारक संसार को मानते हुए भी उसको अकारण घटना मानते थे। श्वेताश्वतर तथा जैनों का यदृच्छावाद तथा बौद्धों का अधीत्यसमुत्पाद ऐसे ही विचारकों के मत थे। कुछ अन्य विचारक संसार और उसके कारण को मानते हुए भी उस भरण को स्वतत्र और अपरिवर्तनीय मानते थे। कालवाद, स्वभाववाद और नियतिवाद तीनों ही इस दृष्टि के अंतर्गत होते हैं।

नियतिवाद :

इसके अनुसार प्रत्येक के भोक्तव्य सुख-दुःख की मात्रा नियत है। मानो नपी-तुली हो। बाशम के अनुसार आजीविक सम्प्रदाय का उद्भव मुख्यतः नियतिवाद अर्थात् अकाट्य भवितव्यता एवं नैराश्य से सम्बन्धित वैचारिक धाराओं से सम्बद्ध प्रतीत होता है, जो धारायें सम्भव हैं कि कुछ आर्यो के भाग्यवादी दृष्अिकोण तथा गंगाघाटी के क्षेत्र में व्याप्त प्रकृति की शक्ति के सामने मानव की असहाय निस्सारता के भाव से जुड़ी थी।[12] आजीविकों के प्रमुख धर्म-प्रणेताओं में कुछ विशिष्ट नाम भी उल्लेखनीय है, जैसे पूरनकस्यप, मक्खलिगोसाल एवं पकुधकच्चापन इनके उल्लेख दीघनिकाय[13] के सामन्जफलसुत्त में है इसमें इनकी धार्मिक अवधारणाओं का भी विवरण मिलता है। ऐसे कुछ विवरण मिलिन्दपन्हो[14], अंगुत्तर[15], संयुक्त[16], मज्झिम[17], जातक[18] में भी है जिनमें इन वादों एवं विचारों का विवरण है जो आजीविकों से सम्बन्धित है।

गोसाल के मत में जन्म-मरण, सुख-दुःख, संसार और मोक्ष सब अतीत कर्म के ऊपर निर्भर है। कर्म सर्वथा नियत और परम कारण है। ऐसा प्रतीत होता है कि

गोसाल समस्त सचित कर्म को प्रारब्ध कर्म के समान यथाकाल पाकोन्मुख तथा सर्वथा अपरिहार्य मानते थे। पुरूषार्थ सर्वथा तुच्छ और हेय है। तथ्य नत्थि ' .... अपरिपक्कं वा कम्मं परिपाचैस्सामि, परिपक्कं वा कम्मं फुस्स फुस्स व्यन्तिकरिस्सामि हेवं नत्थि दोणमिते सुख दुक्खे ....। जैन ग्रंथों में भी आजीवक अक्रियावादी कहे गये है।

यह नियतिवाद कर्म सिद्धान्त की विचारधारा से भिन एवं स्वतंत्र है। इनके अनुसार प्रत्येक जीव को 84 लाख महाकल्पों से गुजरना पूर्वनिर्दिष्ट एवं अनिवार्य था। जीत की अंतिम परिणति को पालि संदर्भो में 'संसार शुद्धि' कहा गया है, जिसके अर्थ है 'आवागमन से मुक्ति'। आजीविक सत्य यही है कि सुगति के लिए कोई द्वार नहीं है। बस नियति की प्रतीक्षा ही अनिवार्य है।[19]

आजीविकों की नियतिवाद की आलोचना जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में मिलती है।[20] आजीविक नियतिवाद के स्रोत के विषय में कई अनुमान है, जैसे प्राचीन मगध चारणों की वीरगाथाओं से इसका जन्म हुआ होगा। इन वीर गाथाओं में यह अनुमान भी है कि दुर्गम अगम्य वीरता के बावजूद भी नायक हत होता है। यह अनुमान भी है कि दुर्गम प्राकृतिक शक्तियों के सामने सामान्य व्यक्ति की सहायता का भाव इस नियतिवाद में निहित है। यह भी कहा गया है कि प्राकृतिक संकट जैसे बाढ़, अकाल, सूखा आदि के प्रति व्यक्ति की असमर्थता से जागृत भाव नियतिवाद में बदल गया। महाभारत की कथा में पशुओं की अकाल मृत्यु के कारण मक्खलि का नियतिवादी बन जाना इस विचार की पुष्टि में किंचित सहायक है। मक्खलिपुत्र गोसाल का समय ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन का युग था जब ाप्राज्यवादी राजव्यवस्था का पदार्पण हो रहा था। नियतिवाद की आजीविक अवधारणा अंततोगत्वा एक केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था का आधार बनी।

अजीविकों के धार्मिक विश्वासों एवं वैचारिक सिद्धान्त से प्रकट होता है कि तत्कालीन समाज में मुख्य धारा से हटकर एक भिन्न जीवन-पद्धति का अनुमान इन्होंने प्रतिपादित किया जो न तो यज्ञ एवं बलि की समर्थक थी, न ही उपनिषदीय एक सत्तावादी दार्शनिक धारा की पक्षधर थी। इसके विपरीत उनका दर्शन प्रकृति के नियमों की अटल सत्ता पर आधारित था जिसमें नियति प्रधान थी। इस विचारधारा में कर्म का निराश्रय एवं व्यक्ति की असमर्थता निहित थी। व्यक्ति के मार्ग का नियति द्वारा पूर्व निर्धारण प्रधान सत्य था। यह विचार तत्कालीन समाज में प्रवर्तमान नई व्यवस्थाओं के कारण भी सम्भव हो सकी। साम्राज्यवादी शक्तियों का विकास जनजातीय संगठनों एव सम्बन्धों का क्रमशः विलोप आदि जैसी नवीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनायें पुरानी व्यवस्थाओं को अब समाप्त कर रही थी। वैदिक व्यवस्थाएँ भी पहले से ही किंचित अमान्य हो रही थी। परिवर्तन के इस युग में आजाविकों ने वैदिक परम्पराओं से भिन्न विचारधारा का प्रसार किया एवं अपने लिए नियति वाद की निराशावादी जटिलता में अतिशय कायाक्लेश की तप साधना का मार्ग स्वीकार किया।आजीविकों को समाज के अन्य वर्गो का विश्वास भी प्राप्त हुआ एवं मौर्य वंश के राजाओं ने भी उन्हें संरक्षण दिया।[21]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजार्थिक परिवर्तन की वैचारिक पृष्ठभूमि में आजीविकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बाशम ने आजीविकों के विकास की पृष्ठभूमि में कई आधारों को स्वीकार किया है जैसे - आर्यो के पूर्वी प्रसार के कारण गंगा-घाटी में प्रचलित अर्येतर जीवन पद्धति से उनका सामंजस्य, मगध विदेह आदि में परिव्राजक भ्रमणशील संतों की रूढ़िवादी विचारवादी परम्परा जिसे विदेह राजा जनक एवं अन्य राजाओं का संरक्षण प्राप्त था, अनार्यो के प्रकृतिवादी विश्वासों से उद्‌भूत कर्म एवं पुनर्जन्म और आत्मा के आवागमन आदि से सम्बन्धित विचार जिसमें परिवर्तन

को एक विशिष्ट नैतिकवादी मानसिकता का आवरण मिला, साम्राज्यवाद का विकास एव गणतन्त्रात्मक राज्य पद्धति सहित, छोटी-छोटी सत्ताओं का हनन, नगरीय सभ्यता का चलन जिसके कारण समाज में एक ओर साधन सम्पन्न, धनी वर्ग (राजा, धनिक श्रेष्ठी आदि) के अति विलासितापूर्ण जीवन साध्य हो गया था। मौद्रिक प्रणाली का चलन स्थापित हो गया था एवं समाज में धनी एवं निर्धन की कोटियाँ स्थापित हो गयी थी। ये सभी कारण छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जनमानस में वैचारिक उद्वेलन का कारण बने।[22] इस विकासमान परिस्थितियों से उत्पन्न नैराश्य भी कठिन तप अपरिग्रह तथा नियतिवाद जैसी जीवन पद्धति एवं मानसिकता का कारण रहा होगा।[23]

वैसे तो बदलती हुई सामाजार्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई विचारकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा योगदान दिया लेकिन जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित किया बौद्ध तथा जैन धर्म ने। विशेष रूप से बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय हुआ। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित वर्ण-व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया तथा संघ में ऊँच-नीच सभी को समान स्थान देकर सामाजिक असमानता को समाप्त करने का प्रयास किया।[24] दासों के साथ उदार व्यवहार[25] का संदेश बौद्ध धर्म के माध्यम से आया।[26]

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम बने। बौद्ध धर्म को अंगीकार करने के कारण ही मातंग नामक चाण्डाल ने 'महाब्रह्म' पद की प्राप्ति की।[27] एक अन्य मंत्रबल से युक्त 'महाचाण्डाल' का उल्लेख अम्ब जातक में प्राप्त होता है।[28] इस जातक के अंत में कही गयी गाथा विशेष उल्लेखनीय है; "क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस में से जिस किसी मनुष्य से किसी को धर्म का ज्ञान प्राप्त हो, वही उसके लिए उत्तम नर है।" इससे इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शूद्र, चाण्डाल तथा पुक्कुस भी

धर्मोपदेश देने में समर्थ बन सकते थे। एक अन्य धार्मिक चाण्डाल[29] तथा 'चम्मसाटक' परिव्राजक[30] का विवरण भी प्राप्त होता है। हिरिजातक में जाति तथा वर्ण के स्थान पर शील तथा श्रेष्ठता पर बल देते हुए कहा गया है कि अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य, वे दोनों लोकों (देव लोक, मानव लोक) को छोड़ दुर्गति को प्राप्त होते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल तथा पुक्कुस सभी इस लोक में धर्माचरण करने से देवताओं के समान होते हैं।[31] गंगमाल जातक में गंगमाल नाई के द्वारा प्रत्येक बुद्धत्व प्राप्त किये जाने पर राजा ने राजमाता तथा राजपरिषद के सहित उसे प्रणाम किया। इसी प्रकार उपालि नामक नाई ने भी संघ में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।[32] थेर तथा थेरी गाथाओं में दस थेर तथा आठ थेरियाँ शूद्र वर्ग से सम्बद्ध थी।[33] इनमें नट, चाण्डाल, डलिया बनाने वाले तथा शिकारी के अतिरिक्त दासी एवं नर्तकी का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[34] एक गृध्र शिक्षक के भिक्षु हो जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[34ए]

क्षत्रियों की स्थिति में उत्कर्ष की पृष्ठभूमि में बौद्ध तथा जैन धर्म ने अभूतपूर्व भूमिका निभाया। यद्यपि बुद्ध ने जन्म पर आधारित जाति की जटिलता पर प्रहार कर शील तथा कर्म को ही अधिक महत्व दिया।[35] संघ में ऊँच-नीच सभी को समान स्थान भी मिला पर संघ से बाहर जहाँ कहीं भी क्षत्रिय ब्राह्मण श्रेष्ठता का प्रसंग आया स्पष्ट रूप से क्षत्रियों को श्रेष्ठ बताया गया।[36] अरिन्दम नामक राजा अपने पुरोहित के पुत्र सोनक को हीन जातीय बताया तथा स्वयं को 'असम्भिन्न खत्तिय वंशे जाता' बताता है जिसके परिवार के सदस्य माता तथा पिता दोनों तरफ से क्षत्रिय थे।[37] वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को अपने बराबर का स्थान देने को तैयार नहीं थे जो माता तथा पिता दोनों हीं ओर से क्षत्रिय नहीं था। वर्णो के उल्लेख में भी क्षत्रियों को प्रथम स्थान दिया गया।[38] क्षत्रियों का यह उत्कर्ष बौद्ध धर्म के प्रभाव का

परिणाम प्रतीत होता है। जैन कल्पसूत्र में इस बात का उल्लेख प्राप्त होता है कि क्षत्रियों की श्रेष्ठता के कारण महावीर स्वामी को ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ से हटाकर क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थापित किया गया। निदान कथा में यह प्रसंग आया है कि बुद्ध ने अपने अंतिम जन्म के लिए क्षत्रिय जाति को चुना क्योंकि उस समय क्षत्रिय जाति श्रेष्ठ थी।[39] क्षत्रियों की श्रेष्ठता बुद्ध तथा अम्बष्ट ब्राह्मण के मध्य हुए वार्तालाप से भी ज्ञात होती है जिसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि ब्राह्मण पुरूष तथा क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न संतान को ब्राह्मण अपनी जाति में सम्मिलित कर सकते थे लेकिन क्षत्रिय नहीं।[40] क्षत्रिय होने के लिए दोनों ओर की पवित्रता बुद्ध ने अनिवार्य बताई। अन्यत्र बुद्ध ने यह स्पष्ट किया है कि, 'निम्नतम स्तर को प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ है।'[41] कोई अन्य जाति वंश-परम्परा में क्षत्रियों की बराबर नहीं कर सकती थी।[42] परन्तु इसके बावजूद भी क्षत्रियों के समाज में सर्वश्रेष्ठ होने का सिद्धान्त प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित लोगों को मान्य नहीं था।

ब्राह्मण वर्ग की दान तथा पोषण की आवश्यकता एवं राज्य वर्ग की 'बलि' या कर लेने की आवश्यकता को पूर्ण करने का दायित्व वैश्य वर्ग पर था। अतः यह आश्चर्य नही कि बौद्ध एवं जैन धर्म में वैश्यों के समर्थन की विचारधारा का जन्म हुआ, जो कृषि, पशुपालन एवं व्यवसाय में सहायक हुई। पशुपालन खेतिहर जीवन का अंग था। कृषि में उत्पादन की नई विधियों के परिप्रेक्ष्य में पशुधन का भी महत्व बढ़ा। जिसके कारण पूर्ववर्ती यज्ञों की परम्परा को आघात पहुँचाना स्वाभाविक था। इस प्रकार बौद्ध धर्म द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अतिरिक्त आर्थिक दृष्टि से विभिन्न पहलुओं की व्याख्या भी कतिपय नवीन संदर्भो में उभरी। बौद्ध धर्म की दृष्टि एवं शिक्षाएँ इस युग में उत्पादन की नई शक्तियों के उदय की परिस्थितियों से जुड़ी थी।

नवोदित कृषि एवं वाणिज्य तथा व्यापार व्यवस्था के संरक्षण की आवश्यकता ने इस धर्म की शिक्षाओं को निर्धारित किया।[43]

बुद्ध ने इन विभिन्न परिवर्तनों को एक वैचारिक मान्यता प्रदान की जो उनकी शिक्षाओं में स्पष्ट है। जैसे उन्होंने कृषि की प्रशंसा की और उसे बढ़ावा दिया। जातकों[44] से मालूम होता है कि बीज बोने के उत्सव में राजा स्वयं हल चलाता था। इससे स्पष्ट है कि गाँव के निवासियों के लिए कृषि का बहुत महत्व था। डायोडोरस ने लिखा है कि भारत में अनेक प्रकार के अनाज होते हैं। शीतऋतु की वर्षा होने पर गेहूँ बोया जाता है और गर्मी के बाद की वर्षा में चावल, तिल आदि बोये जाते है।[45] सूत्रग्रंथों तथा प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन ग्रंथों से भी उपर्युक्त दोनों फसलों के होने की पुष्टि होती है।[46] बुद्ध एवं महावीर ने अहिंसा पर बल दिया ताकि कृषि में उपयोगी पशुधन की रक्षा हो सके। यह विचारधारा पूर्ववर्ती यज्ञों की परम्परा (जिसमें सहस्त्रों पशुओं की बलि होती थी) के विरूद्ध थी। पशुधन की सुरक्षा कृषि के विकास के लिए जरूरी था। एक बौद्ध ग्रंथ[47] में बताया गया है कि अनाज, शक्ति, सौंदर्य तथा प्रसन्नता का स्रोत गाय है। अतः मांस के लिए उनका हनन नहीं किया जाना चाहिए। एक धर्मशास्त्र में भी उनके महत्व को रेखांकित किया गया है। इसके अनुसार दूध देने वाली गाय या भारवाही बैल का बध करने के लिए चन्द्रायण के कठोर प्रायश्चित का विधान है।[48] पालि तथा वैदिक ग्रंथों[49] में गोहत्या के अनेक संदर्भो को देखते हुए इसे आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ और स्वागत योग्य कदम मानना चाहिए। पशु लोगों की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी।

बुद्ध ने व्यक्तिगत सम्पत्ति को स्वीकृति दी, व्यापार के लिए उपयोगी कर्म (जिसमें ऋण तथा सूद लेना, देना भी सम्मिलित था) को मान्यता दी[50] (यद्यपि कुसीद तत्कालीन धर्म सूत्रों में निंदित था)। इस प्रकार जैन-बौद्ध धर्म एक नवीन सामाजार्थिक

परिवर्तनों की पोषक थी। बुद्ध द्वारा निर्देशित भिक्षुओं की जीवन-पद्धति तत्कालीन समृद्धि एव अतिउपभोग की प्रवृत्ति के प्रति प्रतिक्रियावादी थी। जैन धर्म को व्यापारी वर्ग का विशेष आश्रय मिला, क्योंकि इनकी जीवन-पद्धति व्यापार एवं सम्पत्ति में सहायक थी। जैसे अपरिग्रह पर आधारित जीवन पद्धति वाणिज्य में धन के नियमन में सहायक हुई। सम्पत्ति संचय में भूमि पर जैनों की रूचि नहीं थी। वे विनिमय तथा व्यापार से सम्बन्धित आर्थिक विनिमयों में भागीदार रहे। इस भाँति जैन धर्म नगरीय सभ्यता के विकास का आधार बना। सामुद्रिक व्यापार में तो इनका विशेष योगदान रहा एव सूद पर धन देने के कार्य में तथा सामुद्रिक व्यापार में ये जैन मतावलम्बी अत्यधिक कुशल एवं सम्पन्न हुए।[51]

इस प्रकार हम देखते है कि बुद्ध तथा महावीर ने सभी को एक ऐसे नैतिक जीवन के पालन का उपदेश दिया जिसमें परिवार, अतिथि, पितृ, कुल, सम्बन्धी दास, कर्मकर आदि के पालन की व्यवस्था थी। राजा को कर देना, व्यापारी का ऋण चुकाना, ब्याज लेना आदि कृत्यों को भी बुद्ध का समर्थन प्राप्त था, यद्यपि धर्मसूत्रों में कुसीद की निन्दा की गयी है। गौतम और बौधायन दोनों ने ब्राह्मण को कुसीद (महाजनी काम) की छूट दी है यदि यह कार्य कृषि एवं वाणिज्य की भाँति ब्राह्मण किसी सहायक के माध्यम से करे। किन्तु आपस्तम्भ में वार्धुषिकवृत्ति (बढ़ती ब्याज लेना) के विरूद्ध प्रायश्चित का निर्देश है। उन्होंने कुसीदी ब्राह्मण को शूद्र कहा है। शूद्र के धन स्वामित्व का अनुमान भी साध्य है क्योंकि धर्मसूत्र में अशक्त स्वामी का भरण-पोषण उसका कर्तव्य माना गया है।[52]

बुद्ध ने विभिन्न शिल्प कर्मो को भी प्रोत्साहित किया एवं स्त्रियों के द्वारा उन्हें सम्पादित किये जाने के उपदेश दिये। इस भाँति तत्कालीन उत्पादन व्यवस्था एवं उनसे सम्बन्धित वर्गो को संपुष्ट किये रहने का उनका मंतव्य उनकी शिक्षाओं से पूर्णतः

स्पष्ट होता है। निर्वाण केवल भिक्षुओं का लक्ष्य था। उपासक एवं अन्य के लिए उत्पादन-व्यवस्था को बनाये रखने का भाव उनके उपदेशों या कथनों से प्रकट होता है। बहुधा पालिग्रंथों में ऐसे वाक्य है जो आदर्श कृषक या आदर्श श्रेष्ठी या कृषक गृहपति की व्यवसाय सम्बन्धी श्रम या सूझबूझ की प्रशंसा में है और भिक्षुओं से भी धर्म के पालन में वैसे ही श्रम एवं सूझबूझ के उपयोग की अपेक्षा की गयी है। बौद्ध-जैन धर्म ने अंततः इस सारे माहौल में उत्पादन की नई शक्तियों को सशक्त किया, उनसे विकसित राज्य एवं समाज व्यवस्था को समर्थन दिया।[53] विकसित शिल्प, व्यापार, वाणिज्य आदि का विस्तार से वर्णन 'नगरीकरण' नामक उपअध्याय के अंतर्गत अन्य साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जायेगा।

द्वितीय शताब्दी ई0पू0 तक आते-आते [illegible] बदली। अनेकानेक राजनीतिक उतार चढाव आये। आर्थिक प्रगति के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था डगमगायी तो धर्मो को भी समय की गति के साथ नया बाना धारण करना पड़ा। धर्म के अधिकाधिक प्रचार के लिए उनमें नवीन संशोधन अनिवार्य प्रतीत होने लगे। प्रथम शताब्दी ई0पू0 तथा द्वितीय शताब्दी ई0 के मध्य बौद्ध धर्म की नवीन शाखा 'महायान' का उद्‌भव और विकास सम्भव हुआ।[54] इसी समय महायान से सम्बन्धित 'प्रज्ञापारमिता' सूत्रग्रंथ लिखे गये। हीनयान शाखा के अनुयायी बुद्ध की मूल शिक्षा से जुड़े रहे परन्तु महायानियों ने नवीन सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से बौद्ध धर्म को नूतन कलेवर प्रदान किया। हीनयान बौद्धों का गढ़ श्रीलंका, वर्मा तथा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में स्थापित हुआ और महायान बौद्धों ने भारत, मध्य एशिया, तिब्बत, चीन तथा जापान में प्रधानता प्राप्त की। ईसा की प्रथम शताब्दियों तक महायानियों ने बुद्ध की मूर्ति को पाषाण में उत्कीर्ण कराकर ईश्वर-रूप में पूजना प्रारम्भ कर दिया था।

लगभग इन्हीं शताब्दियों में जैन सम्प्रदाय भी विभाजित हो गया। 'दिगम्बर' जैन अपने सिद्धान्तों में रूढ़िवादी ही बने रहे, जबकि श्वेताम्बर जैनों ने अपने सिद्धातों में उदारतापूर्वक संशोधन स्वीकार किया।

वैष्णव धर्म का प्रारम्भिक रूप भागवत धर्म के अतर्गत देवकी पुत्र भगवान् वासुदेव कृष्ण के पूजन में दर्शित होता है जो सम्भवत' छठी शताब्दी ई0पू0 के पहले स्थापित हो चुका था।[55] वासुदेव जो कृष्ण का प्रारम्भिक नाम था, पाणिनि युग में प्रचलित हुआ। उस युग में वासुदेव की उपासना करने वाले 'वासुदेवक' कहे जाते थे।[56] सम्भवतः वासुदेव कृष्ण को प्रधान देवता मानकर उनकी उपासना समाज में भक्ति के नये आदर्श के रूप में प्रचलित हुई। पतंजलि के अनुसार वासुदेव विष्णु के रूप थे। तत्कालीन समाज में कंस और वासुदेव सम्बन्धी आख्यान प्रचलित हो चुके थे।[57] वासुदेव के चतुर्व्यूह का उल्लेख भी पतंजलि द्वारा किया गया है।[58] कृष्ण और सकर्षण की सम्मिलित सेना तथा उनके प्रासाद और मंदिरों का भी विवरण उसमें मिलता है।[59] अतः पाणिनि काल में वासुदेव का पूजन और भागवत धर्म का प्रसार तीव्र गति से प्रारम्भ हो चुका था। गृह पत्नी और गृहपति, जो भागवत धर्म का अनुसरण करते थे, 'भागवती' और 'भागवतम्' कहे जाते थे।[60] वासुदेव के उपासकों के प्रारम्भिक अभिलेख भी मिलते हैं। बेसनगर स्थित द्वितीय ई0पू0 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि यूनानी दूत तक्षशिला निवासी होलियोडोरस ने देवाधिदेव वासुदेव के स्मरण में गरूड़ध्वज स्थापित कराया था।[61] उसने स्वयं को भागवत बताया है।[62] पहली सदी ई0पू0 के नानाघाट अभिलेख में संकर्षण (वासुदेव कृष्ण के भाई बलराम) और वासुदेव का उल्लेख हुआ है, जो तद्‌युगीन वासुदेव पूजन के प्रचलन और वासुदेव धर्म के प्रसार को पुष्ट करता है।[63]

महाभारत में वासुदेव का नाम अनेक बार आया है। वासुदेव के सम्बन्ध में भीष्म का कथन है, ''इस नित्य, मंगलमय, अद्भुत और अनुरागी देवता को वासुदेव रूप में समझना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भक्ति-संवलित कार्यो से उनकी पूजा करते है।[64] वृष्णि लोग वासुदेव के अनुयायी थे जो कालान्तर में 'सात्वत' भी कहलाये।[65] भगवान वासुदेव ने स्वयं कहा है कि ''मै वृष्णियों में वासुदेव हूँ, पाण्डवों में धनंजय, मुनियों में व्यास और कवियों में उशना।[66] सात्वत लोग वासुदेव को परमब्रह्म के रूप में मानकर विशिष्ट साधना द्वारा पूजते थे।[67] राजपूताना के घोसुण्डी से पाये गये एक खण्डित अभिलेख में संकर्षण तथा वासुदेव के उपासना मण्डल के चारों ओर भित्ति निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है।[68] इस अभिलेख की तिथि ई0पू0 प्रथम शताब्दी में रखा गया है। उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि ईसा पूर्व द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी में पांचरात्र या भागवत मत विकसित हो चुका था। इस मत का सर्वोच्च्व प्रतिपादन भगवद्गीता में हुआ है, जो महाभारत में जोड़ी गई है, भगवद्गीता की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है, परन्तु इसे साधारण रूप से प्रथम द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास माना जाता है।[69]

महाभारत में शांति पर्व के नारायणीय खण्ड में वासुदेव का तादात्म्य नारायण के साथ किया गया है। नारद को परम् पुरूष वासुदेव ने वासुदेव धर्म की दीक्षा दी थी। इसलिए पहले वह नारायण की अराधना करते थे और तब पितरों की। नारायण ही उनके माता-पिता और पितामह थे।[70] महाभारत के शांति पर्व के 65वें तथा 66वें अध्याय में ही परमात्मा को नारायण एवं विष्णु कहा गया है तथा वासुदेव से उनका एकत्व स्थापित किया गया है।[71]

वैष्णव धर्म का प्रधान मत पांचरात्र मत था। इस सिद्धान्त के अनुसार सकल विश्व का बीज 'पौरुषी रात्रि' (प्रलय) के रूप में भगवान वासुदेव में समाहित है।

ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज उनके छः गुण हैं। मथुरा के निकट मोरा से प्राप्त एक अभिलेख जिसकी तिथि प्रथम शताब्दी ई0 के आस-पास निर्धारित की गयी है, में पाँच वृष्टिवीरों की उपासना का उल्लेख प्राप्त होता है।[72] वायुपुराण में इनके नाम संकर्षण, प्रद्युम्न, वासुदेव, साम्ब तथा अनिरूद्ध बताए गये हैं। इनमें से चार नाम संकर्षण, प्रद्युम्न, वासुदेव, अनिरूद्ध भागवत धर्म के चतुर्व्यूह सिद्धान्त से सम्बन्धित है। यह व्यूह भागवत सम्प्रदाय का एक वैशिष्ट्य है। व्यूह सिद्धान्त में जीव को सकर्षण से, अहंकार को अनिरूद्ध से तथा मन को प्रद्युम्न से अभिन्न मानते हुए परमेश्वर की तीन प्रकृतियों को संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध का व्यक्तितत्व प्रदान किया गया। वासुदेव कृष्ण की कथाएँ ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के कुछ पहले ही प्रचलित हो चली थी तथा लगभग इसी समय के आसपास आभीर देवता की पूजा भी वासुदेव कृष्ण में निमज्जित हो गयी प्रतीत होती है।[73] वैष्णव धर्म ने विदेशियों के आर्यीकरण में भी योगदान दिया।

शैव धर्म के अंतर्गत शैव भागवतों में एक नवीन मत पाशुपत का उदय होता है। पतंजलि के अनुसार शिव भागवत अपने उपास्य के आयुध शूल को लिए रहते थे।[74] पाशुपत मत का उल्लेख महाभारत में हुआ है।[75] जिसका उपदेश ब्रह्मा के पुत्र भूतनाथ श्रीकण्ठ उमापति शिव ने शांत चित्त होकर दिया था।[76] ऐसा लगता है, पाशुपत मत का उदय महाभारत की रचना से बहुत पहले किसी समय हो गया था। पाशुपत मत का विकास क्रमशः हुआ तथा इसका उल्लेख पुराणों और अभिलेखों में मिलता है। वायु पुराण और लिंग पुराण के विवरणों के अनुसार पाशुपत मत का उद्भव लकुलिन अथवा लकुलीश नामक ब्रह्मचारी द्वारा हुआ जो शिव के अवतार थे।[77] जो स्थान वैष्णव धर्म में पांचरात्र का है वही स्थान शैव धर्म में पाशुपत का। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से कुछ पहले तथा ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में

शिव-पूजा गान्धार, पंजाब तथा उत्तर भारत के कुछ अन्य भागों में प्रचलित हो चुकी थी। चतुर्थ शताब्दी ई0 से पहले निर्धारित महामयूरी नामक ग्रंथ में उत्तर-भारत के कई स्थानों का उल्लेख है जहाँ शिव प्रधान रूप से पूजे जाते थे।[78] पन्जतर अभिलेख (64 ई0) उत्तर-पश्चिम भारत में महावन के नीचे एक शिव-स्थल का उल्लेख करता है।[79] तक्षशिला के सिरकप टीले से प्राप्त एक मुद्रा जो प्रथम शताब्दी ई0पू0 की है, पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि के साथ शिवाकृति उत्कीर्ण है।[80] विदेशियों ने भी शैव-धर्म को मान्यता दी। गोण्डोफर्नीज तथा विमकडफिसेस की मुद्राओं से शिव की लोकप्रियता का आभास मिलता है। कुषाण शासक हुविष्क (दूसरी सदी ई0) की मुद्रा पर इसी प्रकार का चित्र अंकित है, जो इस सम्प्रदाय के विषय में ज्ञान प्रदान करने वाला एक प्राचीन प्रमाण है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के आस-पास ही लिंग-पूजा भी शिव-पूजा में समाहित हो गयी।[81] ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में शाक्त तथा सौर सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आ चुके थे किन्तु इनका पूर्ण विकास आगे आने वाले काल में हुआ।[82]

इन विभिन्न धर्मो एवं सम्प्रदायों की संक्षिप्त रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से दूसरी शताब्दी ई0 तक इनका वर्चस्व समाज में स्थापित हो गया था जिसके फलस्वरूप अनेकानेक सामाजार्थिक परिवर्तन सम्भव हुए। बौद्ध, वैष्णव, शैव तथा अन्य छोटे-छोटे धार्मिक सम्प्रदायों ने जहाँ हीन वर्गीय व्यक्तियों के उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया वहाँ इन धर्मो को अपना कर कुछ विदेशी भी भारतीय जनता में सम्मानित स्थिति के अधिकारी बने।[83]

पश्चिमी भारत से प्राप्त गुहालेखों में ऐसे कई बौद्ध मतावलम्बी यवनों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने बौद्ध स्तूपों तथा धर्मशालाओं के निर्माण में उदारतापूर्वक दान दिये। पूना के निकट से प्राप्त लेख में सिंहध्वज[84] नामक यवन के उपहार का

उल्लेख किया गया है। धम्म नामक एक अन्य यवन द्वारा भी उपहार दिये जाने का विवरण इसी कार्ले गुहालेख में प्राप्त होता है।[85] ये दोनों ही यवन धेनुकाटक के बताये गये हैं। इनके नाम भी भारतीय समाज में समाहित होने के संकेत देते हैं। जुन्नार गुहालेख[86] में यवन दानकर्ताओं का उल्लेख प्राप्त होता है

1 'यवनस इरिलस गतानं देयधम वे पोढियों'।

2. 'यवणस चिटस गतानं भोजणमपटयो देयधम सधे'।

3. 'यवनस चंदानं देयधम गभदार'।

इन यवन दानकर्ताओं में केवल 'इरिल' का नाम ही विदेशी ज्ञात होता है शेष दोनों यवनों के नाम हिन्दू प्रतीत होते हैं। चिट चित्र तथा चन्द चन्द्र का आभास देता है। नासिक की गुफाओं में केवल एक लेख प्राप्त हुआ है। इसमें धर्मदेव के पुत्र इन्द्राग्निदत्त द्वारा प्रदत्त चैत्यगृह की चर्चा है।[87] धर्मदेव को यवन तथा उत्तर के दत्तामित्र नामक किसी स्थान का निवासी बताया गया है।[88] महाभाष्य के अनुसार दत्तामित्र आधुनिक सिन्धु के निकटस्थ सौवीर में कहीं स्थित है जिसे डेमिट्रयस द्वारा संस्थापित अनुमानित किया गया है। मेलाण्डर की बौद्ध अनुयायियों में लोकप्रियता का प्रमाण 'मिलिन्दपन्हो' के रूप में उपस्थित है।

बौद्ध धर्म के माध्यम से केवल यूनानियों ने ही 'धर्मात्मा' कहलाने का सम्मान नही पाया अपितु शक तथा कुषाणों को भी इसी रीति से हम भारतीय समाज में उच्च स्थिति प्राप्त करते हुए देखते है। अधिकांश शक शासक बौद्ध हो गये थे। स्पेलिरिसेज, एजलिसेज, स्पेलेहौरेस, स्पैल्गैडेमीज ने सिक्कों पर स्वयं को 'ध्रमिक' कहा है जिसका तात्पर्य सम्भवतः बौद्ध धार्मिक से है।[89] उनके सिक्कों पर चक्र का प्रतीक भी निर्मित है, जो बुद्ध के 'धर्मचक्र' का स्मरण दिलाता है। नासिक से प्राप्त

अभिलेख, जो स्वय को ईश्वरसेन से सम्बन्धित करता है, 'विष्णुदत्ता' नाम्नी स्त्री का उल्लेख करता है, जो बौद्ध उपासिका थी। विष्णुदत्ता ने रोगियों की दवा के निमित्त दान प्रदान किया था। यह शकनिका विष्णुदत्ता अग्निवर्मन् शक की पुत्री, गणपक रेमिल की पत्नी तथा गणपक विश्ववर्मन की जननी कही गयी है।[90] क्षत्रप परिवारों में से दो पूर्णतया बौद्ध मतावलम्बी बन गये थे। मथुरा-लायन-कैपिटल अभिलेख में महाक्षत्रप राजुवुल की पत्नी नदसि-कस द्वारा बौद्ध स्तूप के निर्माण का उल्लेख है।[91] इसी परिवार के अन्य सदस्यों अबू हौला, ह्युअर तथा हन इत्यादि के दानों का उल्लेख भी इसी लेख में मिलता है।[92] तक्षशिला के क्षत्रप परिवार के लियाक कुसुलक के पुत्र पतिक को तक्षशिला ताम्रपात्र में एक बौद्ध स्तूप का निर्माणकर्ता तथा स्तूप के प्रबन्ध के लिए भूमिदान करने वाला बताया गया है।[93]

बाद्ध धर्म अपनाने वाले कुषाणों में कनिष्क का नाम लोकविश्रुत है। उसके सिक्कों पर बुद्ध आकृति बैठी हुई तथा खड़ी हुई मिलती है।[94] उसके राज्यकाल में बौद्धों की संगीति का आयोजन किया गया जिसमें बौद्ध भिक्षुओं ने महायान का सही स्वरूप निर्धारित किया। कनिष्क के अभिलेख उसे निःसंदेहात्मक रूप से बौद्ध सिद्ध करते है।[95] राजतरंगिणी के अनुसार कनिष्क ने कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था और अनेक बाद्ध बिहार बनवाये थे। कनिष्क से भी पहले कुजुल कडफिसेज के सिक्कों पर उसे सच-धम्म-थित (सत्यधर्म स्थित) कहा गया है।[96]

वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मतों को स्वीकार कर लेने वाले विदेशियों के उदाहरण भी कम नहीं है। द्वितीय शताब्दी ई0पू0 का मालवा (ग्वालियर) के समीप स्थित बेसनगर से प्राप्त लेख में एक गरूड़ध्वज के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है। लेख के अनुसार इस गरूड़ध्वज का निर्माण 'दिय' के पुत्र 'हेलियोडोरस' ने देवताओं के ईश्वर वासुदेव के सम्मान में स्थापित किया था।[97] हेलियोडोरस को यवन

राजदूत कहा गया है। ग्रीक होने के बावजूद हेलियोडोरस हिन्दू तो बना ही साथ ही उसने वैष्णव धर्म भी अंगीकार कर लिया। लेख में उसके लिए दी गयी भागवत उपाधि हिन्दू समाज में उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति की द्योतक है। यह कल्पना करना कठिन है कि कृष्ण वासुदेव के 'भागवत' अनुयायियों द्वारा वह शूद्र माना जाता रहा होगा।[98]

काठियावाड़ तथा मालवा के क्षत्रप एवं दक्कन के क्षत्रपों के विषय में विद्वानों का अनुमान है कि ये दोनों वंश ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे। नासिक से प्राप्त एक लेख[99] में एक दानकर्ता का उल्लेख है वह उषवदात है जो ऋषभदत्त की ओर संकेत करता है। नासिक से ही प्राप्त एक दूसरे लेख में उसकी पत्नी का नाम 'दक्षमित्रा' (दखमित्रा) कहा गया है।[100] ये दोनों ही नाम हिन्दू प्रतीत होते है नासिक से प्राप्त उपर्युक्त अभिलेख में उसके पिता दीनीक तथा श्वसुर नहपान क्षहरात कहे गये हैं। क्षहरात अभारतीय शब्द है। ये सभी तथ्य उषवदात अथवा ऋषभदत्त के विदेशी होने के समर्थक है। कार्ले गुहालेख में इसे 'त्रिगोशतसहस्त्रद' अर्थात् तीन लाख गायों को दान करने वाला कहा गया है। उसने देवताओं तथा ब्राह्मणों को सोलह गाँव दान में दिये थे तथा प्रतिवर्ष वह एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराता था।[101] डी०आर० भण्डारकर ने ठीक ही लिखा है कि उसका यह दान ग्वालियर के महाराज सिन्धिया द्वारा दिये गये ब्राह्मण भोज का स्मरण दिलाता है।[102] उसके द्वारा दिये गये दान तथा भोज इस बात के प्रतीक हैं कि वह ब्राह्मण धर्म का कट्टर अनुयायी था।

ब्राह्मण धर्मावलम्बी क्षत्रपों का दूसरा वंश काठियावाड़ में शासन कर रहा था। इसकी राजधानी उज्जैन थी। इस राजवंश में चष्टन के उपरान्त सभी राजाओं के नाम हिन्दू है। जयदामन तथा रूद्रदामन[103] के 'जय' तथा 'रूद्र' में हिन्दुत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

कुषाणवंशी शासक विम कडफिसेज ब्राह्मण धर्मावलम्बी था। उसके सिक्कों के पृष्ठ भाग पर 'महारजस-रजदिरजस-सर्व लोग-ईश्वरस-महिश्वरस-विम कथफिशज त्रतरस' उत्कीर्ण मिलता है।[104] 'महिश्वरस' का समीकरण माहेश्वरस्य के साथ किया गया है।[105] इस शब्द से वह शैव सिद्ध होता है। सिक्कों के दूसरी ओर चित्रित नन्दी[106] की आकृति से उसके शैव होने का प्रमाण मिलता है। यदि कोई संदेह रह भी जाता है तो वह उस मानव-आकृति से स्पष्ट हो जाता है जो त्रिशूल तथा चीते की खाल के साथ अंकित है।[107] हुविष्क के सिक्कों पर 'स्कन्दो' (स्कन्द), 'महसेनो' (महासेन), 'कोमारो' (कुमार), 'विजगो' (विशाख) तथा 'ओएशो' (शिव) के चित्र मिलते हैं।[108] यह कहन की आवश्यकता नहीं कि ये देवता ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित थे। सिक्कों पर इनका उल्लेख हुविष्क के ब्राह्मण धर्मावलम्बी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। हुविष्क के एक ताम्र सिक्के पर गणेश का उल्लेख भी मिलता है। अंतिम कुषाण वंशी राजा वासुदेव की मुद्राओं पर भी शिव और नन्दी की आकृतियाँ उत्कीर्ण है जो उसके शैव होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है।[109] वासुदेव का नाम भी पूरी तरह उसके भारतीय समाज में सम्मिलन का प्रतीक है।[110]

इस प्रकार हम पाते है कि व्यक्ति के उन्नयन में धर्म एक प्रभावी कारण, रहा है। उन्हें कुछ नवीन धार्मिक अधिकार भी प्राप्त हो गये। शूद्र याजकों[111] का उल्लेख मनुस्मृति में प्राप्त होता है। मनु ने धर्मोपदेश देने वाले शूद्र[112] को दण्ड देने की जो बात कही है उसके पीछे उनकी धर्माधता ही झलकती है। लेकिन मनु ने ही इस बात का उल्लेख किया है कि उत्तम धर्म यदि चाण्डाल से भी प्राप्त हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए।[113] कुछ इसी प्रकार की बात महाभारत के शांति पर्व में भी कही गयी है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सूद्र तथा नीच पुरूष से भी यदि श्रेष्ठ ज्ञान मिले तो वह ग्रहण करने योग्य है।[114] पहले-पहल महाभारत के शांति पर्व में ही शूद्र (चारों वर्ण)

वेद सुनने के अधिकारी बनाये गये।[115] सभी वर्णो को ब्रह्मस्वरूप ही माना गया है तथा यह भी कहा गया कि ब्रह्म से भिन्न कोई भी नहीं है।[116]

इस काल में पंचमहायज्ञों के सम्पादन तथा दान का अधिकार भी शूद्रों को प्राप्त हो गया।[117] पैजवन शूद्र ने यज्ञ का सम्पादन कर 'एक लाख' पूर्णपात्र दान किये थे।[118] श्रद्धा रखने वाले सभी वर्णो को यज्ञ करने का अधिकारी बताया गया।[119] शाति पर्व में ही याज्ञवल्क्य तथा बृहस्पति ने उन्हें चन्द्रायण तथा प्राजापत्य प्रायश्चित का अधिकार भी दिया।[120] वृहस्पति ने शूद्रों को चूड़ाकर्म तथा कर्णबेधन सस्कार से भी अधिकृत किया।[121] याज्ञवल्क्य ने मनु के समान शूद्र ऋत्विजों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा।[122] श्राद्ध करने का अधिकार शूद्रों को सबसे पहले याज्ञवल्क्य ने दिया जिसकी पुनरावृत्ति वायु तथा मत्स्य पुराण में भी मिलती है।[123]

इस काल में शूद्रों के उत्कर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण दान देने के अधिकार में दिखायी पड़ता है।[124] याज्ञवल्क्य से पहले दान के विभिन्न प्रकार तथा दान की इतनी अधिक प्रशंसा नहीं मिलती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में पूरा का पूरा एक प्रकरण ही दान से सम्बन्धित है। वृहस्पति ने शूद्रों को दान लेने का अधिकारी भी माना है।[125]

वैष्णव धर्म ने जिस प्रकार विदेशियों के आर्यीकरण में योगदान दिया उसी प्रकार अनेकों पापलिप्त जनजातियों को भी विष्णु पूजा से पवित्र हो जाने की बात कही है।[126] वैष्णव तथा शैव धर्म ने भी शूद्रों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया। वेदों में पारंगत ब्राह्मणों द्वारा भी शूद्र भक्त साक्षात् विष्णु ही समझा गया।[127] तप से उत्कृष्ट स्थान की प्राप्ति की बात महाभारत के शांति पर्व में कही गयी है।[128] भागवत पुराण में कहा गया है कि 'ब्राह्मण हो चाहे श्वपाक, भगवद्भक्ति से वह पवित्र हो जाता है।[129] सच्ची भक्ति रखने वाला श्वपाक सच्ची भक्ति न जानने

वाले सर्वगुण सम्पन्न ब्राह्मण से श्रेष्ठ माना गया।[130] कृष्ण, नारायण, वासुदेवोपासना से वे मुक्त हो सकते थे।[131] श्रद्धापूर्वक ईश्वर का नाम केवल एक बार लेने वाला हीन व्यक्ति बन्धनमुक्त हो सकता था।[132] महाभारत के अनुसार विष्णु के शूद्रभक्त का अनादर करने वाले दस कोटि वर्ष तक नरक के भोगी बनते थे।[133]

अतः इन प्रमाणों से स्पष्ट हो गया है कि सामाजार्थिक स्थिति को प्रभावित करने में इन वैचारिक धार्मिक दृष्टिकोणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

व्यक्ति के शिक्षित होने पर ही समाज सुसंस्कृत बनता है, इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए प्राचीन काल से ही समाज में व्यवस्था की जाती रही है। शिक्षा का रूप बदल सकता है लेकिन जीवन को सफल बनाने की दिशा में उनका महत्व कम नहीं हो सकता। प्राचीन काल में शिक्षा के समय विभिन्न संस्कार भी सम्पादित किये जाते थे जो व्यक्ति को इस बात की अनूभूति कराते थे कि उसके जीवन में इस सस्कार के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन होने जा रहा है। उदाहरण के लिए, उपनयन सस्कार उसे इस बात की अनुभूति कराता है कि वह इस संस्कार के बाद उस समुदाय की सास्कृतिक परम्परा का अध्ययन करेगा, जिस समुदाय विशेष का वह सदस्य है। इस प्रकार शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तितत्व का पूर्ण विकास करके व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति में सहायक होता है।

सामाजिक उत्थान-पतन में शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ होता है। प्राचीन भारत में तो सदैव ही वेदज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। एक 'वेदज्ञ को सदैव ही समाज में वरीयता दी जाती थी चाहे वह किसी भी वर्ण का क्यों न हो। गुण सम्पन्न तथा ज्ञानवान व्यक्ति को समाज में आदर प्राप्त था।[134] उपनयन के सम्बन्ध में विशिष्ट आयु का निर्धारण किया गया है। वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मणों का उपनयन सोलहवें वर्ष तक, क्षत्रियों का बाइसवें वर्ष तक तथा वैश्यों का

चौबीसवें वर्ष तक अवश्य हो जाना चाहिए नहीं तो इसके बाद उनका पतन हो जाता है।[135] इस प्रकार पतित हुए व्यक्तियों को जाति-बहिष्कृत के समान बताया गया है। ऐसे व्यक्तियों का उपनयन तथा शिक्षा तो वर्जित की गयी उनके लिए यज्ञ कराने तथा उनके साथ विवाह-सम्बन्ध का भी निषेध किया गया है।[136]

द्विजातियों में जिनका उपनयन संस्कार नहीं होता था उनका स्थान समाज में गिर जाता था। धर्मसूत्रों में कहा गया है कि जिन व्यक्तियों के पिता, पितामह तथा प्रपितामहों के उपनयन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है, उन्हें श्मशान भूमि कहा गया है।[137] उनके साथ खान-पान तथा विवाहादि सम्बन्ध वर्जित किये गये है। अनपुनीत व्यक्ति से जो पुत्र उत्पन्न होते थे उन्हें 'व्रात्य' की संज्ञा दी गयी है।[138] वेदों से अनभिज्ञ ब्राह्मण काष्ठ निर्मित हाथी तथा चमड़े द्वारा निर्मित हरिण के समान बताये गये हैं।[139] वेदों की अवज्ञा करने वाला सन्यासी भी शूद्रवत् हो जाता था।[140] बौधायन के अनुसार वेदाध्ययन तथा विद्वान ब्राह्मण की अवज्ञा करने पर उच्च परिवारों का अपकर्ष हो जाता था।[141] इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि द्विजातीय व्यक्ति यदि वेदाध्ययन नहीं करता था तो वह जीवितावस्था में ही शूद्रावस्था को प्राप्त हो जाता था।[142]

अपने सामाजिक पतन से उबरने के लिए अनेकानेक प्रायश्चितों का भी विधान किया गया था।[143] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपकर्ष स्थायी नहीं था। यह स्थायी तभी होता होगा जब किसी कारणवश व्यक्ति इन प्रायश्चितों को करने में असमर्थ होता होगा।

सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में जहाँ शिक्षा के अभाव में व्यक्ति का अधोमुखी परिवर्तन हुआ वहीं शिक्षा द्वारा व्यक्ति का उर्ध्वमुखी परिवर्तन भी हुआ। आपत्तिकाल में अब्राह्मण आचार्य द्वारा अध्ययन करने की छूट प्रदान की गयी है।[144]

यह इस बात की सम्भवना को प्रकट करता है कि शिक्षा के माध्यम से अब्राह्मण आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हो सकते थे। विदेह के शासक जनक, काशी का शासक अजातशत्रु, कैकयनरेश अश्वपति, पांचालनरेश प्रवाहण जैबलि, सनत्कुमार सम्राट प्रतर्दन, जानश्रुति पौत्रायण, वृहद्रथ आदि ऐसे क्षत्रिय राजा थे जो ज्ञान और दर्शन के अप्रतिम विद्वान थे और जिन्होंने अनेक ब्राह्मण आचार्यो को आध्यात्मज्ञान कराया था।[145]

जातकों से विदित होता है कि अनेक शूद्र उच्च कोटि के विद्वान थे। सुत्तनिपात में विवरण है कि मातंग नामक चाण्डाल विख्यात ज्ञानी था जिसके यहाँ दूर-दूर से उच्च वर्ण के लोग आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्ध युग में शूद्रों को विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता था। स्वयं महात्मा बुद्ध के अनेक वर्ण के लोग शिष्य थे उपालि जन्म से नापित था। सुनीति जाति का भंगी था। सेतकेतु जातक में एक पण्डित चाण्डाल पुत्र का उल्लेख मिलता है जिसके सम्मुख उदीच्चकुलोत्पन्न श्वेतकेतु नामक ब्राह्मण को पराजय स्वीकार करनी पड़ी।[146] इसी प्रकार चित्र तथा सम्भूत नामक दो चाण्डाल भाइयों द्वारा तक्षशिला में शिक्षा ग्रहण करने तथा प्रव्रज्या लेने का विवरण चित्तसम्भूत जातक में प्राप्त होता है।[147] अतः बौद्धधर्म के कारण कुछ निम्न स्तर के लोगों को भी शिक्षा का अवसर मिला होगा। इस सम्बन्ध में दिव्यावदान में 'प्रकृति' नामक चाण्डाल कन्या की कथा मिलती है जिसने भिक्षुणी बन जाने के बाद बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा में प्रवीणता प्राप्त की।[148] महाभारत तथा रामायण में विवृत है कि आर्येतर और शूद्र स्वाध्याय करते थे' तथा समाज में उनका उच्च स्थान था।

यदि किसी समाज की चर्चा हो और स्त्रियों की बात न हो तो चर्चा अधूरी ही रह जाती है। इस प्रकार अब हम यह देखेंगे का प्रयास करेंगे कि विवेचित काल में नारियों की स्थिति-परिवर्तन में शिक्षा की क्या भूमिका रही है ? जैसा कि

हम पाते है वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में सम्मान, प्रतिष्ठा तथा गौरव का अधिकारी माना जाता था। उनकी शिक्षा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। यह इस बात से स्पष्ट है कि ऋग्वेद की अनेक ऋचाएँ लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता, निबावरी और घोषा आदि विदुषी स्त्रियों की रची हुई है।[149] वृहदारण्यक उपनिषद में ऐसे धार्मिक कृत्य का उल्लेख है जिसका उद्देश्य विदुषी पुत्री प्राप्त करना था।[150] कुछ ऐसे भी यज्ञ थे जिनका सम्पादन स्त्रियाँ अकेले ही कर सकती थीं जैसे- सीतायाग, रूद्रयाग तथा रूद्रबलि।[151]

ई0पू0 पाँचवी शताब्दी के लगभग नारियों की स्थिति में गिरावट के लक्षण दिखायी देने लगते है लेकिन उनका उपनयन सस्कार अभी बन्द नही हुआ था। गृह्यसूत्रों तथा धर्मसूत्रों में कुछ ऐसे उदाहरण प्राप्त होने लगते है जिसमें स्त्रियों को शूद्रों के समकक्ष माना जाने लगा था।[152] भगवद्गीता में स्त्रियों को शूद्रों के समकक्ष माना गया है।[153] इस प्रवृत्ति की सर्वप्रथम झलक शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है जिसे लगभग पांचवी शताब्दी ई0पू0 का माना गया है।[154] गीता के उदाहरण से स्पष्ट है कि लगभग ई0पू0 दूसरी शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति समाज में बहुत गिर गयी थी।

स्त्रियों की स्थिति में गिरावट के कारणों में यज्ञ पद्धति की जटिलता में वृद्धि तथा कन्या पक्ष के संदर्भ में विवाह की आयु का घट जाना प्रधान कारण रहे।[155] विवाह की आयु के घट जाने का एक कारण जैन तथा बौद्ध धर्म के प्रचार के कारण बड़े पैमाने पर शिक्षुणी बन जाने की प्रवृत्ति रही होगी। धर्म सूत्रों[156] से ज्ञात होता है कि कन्याओं का विवाह वयःसन्धि से पूर्व हो जाना चाहिए फलस्वरूप विवाह की आयु घट जाने का प्रभाव उपनयन संस्कार पर पड़ा और वह एक औपचारिकता मात्र रह गया जिसके फलस्वरूप वेदाध्ययन तथा यजन की गम्भीरता भी

गौण हो गयी। जेसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि अनेक आर्येतर जातियों का भी इस काल में आर्यीकरण हुआ था। इस प्रकार जहां तक आर्य गृहों में अर्येतर पत्नियों में शैक्षिक धार्मिक अधिकारों का प्रश्न है, वे यज्ञ में भाग लेने तथा वेदाध्ययन के योग्य नही थी क्योंकि वे वैदिक संस्कृत भाषा से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ थीं। स्त्रियों को शैक्षिक अधिकारों से वंचित करने का विकसित रूप मनु तथा यज्ञवल्क्य के काल में साफ-साफ सामने आ गया।

स्त्रियों की स्थिति में गिरावट के बावजूद कुछ महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त कर सम्मान में उच्च स्थान प्राप्त किया। बौद्ध धर्म ने स्त्रियों के लिए भिक्षुणी संघ की व्यवस्था कर उन्हें अपनी स्थिति सुधारने का अवसर प्रदान किया। बौद्ध धर्म की एक बहुत बड़ी विशेषत्ता रही है कि उसने पुरूष और नारी दोनों को समान रूप से उत्कर्ष का अवसर दिया। इससे लाभ उठाने में एक ओर जहाँ राजवंशों की कन्यायें थी[157] तो दूसरी ओर सेठों की कन्यायें भी थीं।[158] इसी प्रकार ब्राह्मण[159] तथा गृहपति अथवा वैश्य वर्ग से सम्बन्धित स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बनने लगी थीं। सर्वाधिक लाभ निर्धन तथा निम्न वर्ग की स्त्रियों को हुआ जो संघ में प्रवेश पाकर अन्य भिक्षुणियों के समान स्तर पर आ खड़ी हुई। शुभा नामक थेरी एक सुनार की पुत्री थी।[160] कृशा गोतमी निर्धन परिवार की थी।[161] निर्धन परिवार की ही सुमंगलमाता[162] नामकी स्त्री ने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा कोसल जनपद के एक दरिद्र ब्राह्मण की कन्या मुक्ता भी भिक्षुणी बनकर सम्मानित हुई। श्रावास्ती की पूर्णिका पहले एक साधारण पनिहारिन थी जो बाद में भिक्षुणी बन गयी।[163] भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च्व शिक्षा प्राप्त स्त्री थी जिसकी विद्वता की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। अम्बपाली[164] नामक वारांगना को युद्ध द्वारा दिया गया सम्मान लोकविश्रुत है। जनपद कल्याणी नन्दा ने थेरीपद का सम्मान प्राप्त किया।[165] वड्ढेसी प्रजापति गौतमी की सेविका थी।[166]

कई विदुषी स्त्रियों के प्रसंग जातक कथाओं में उपलब्ध हैं। भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र को चार स्त्रियों ने शास्त्रार्थ के लिए श्रावस्ती में चुनौती दी थी।[167]

अनेक महिलायें शिक्षिका बनकर अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत करती थीं जो अपना शिक्षण कार्य उत्साह और लगन के साथ निष्ठापूर्वक सम्पन्न करती थीं। ऐसी स्त्रियाँ उपाध्याया कही जाती थी।[168] ये उपाध्याया छात्राओं को पढ़ाया करती थीं तथा उन्हें अन्याय विषयों का ज्ञान प्राप्त कराती थीं। इनकी अलग शिक्षा शालायें हुआ करती थीं जहाँ महिलायें जाकर शिक्षा ग्रहण करती थीं। ऐसी महिला शिक्षण-शालाओं का प्रबन्ध उपाध्यायाएँ ही करती रहीं। पाणिनि ने महिला-शिक्षणशाला का उल्लेख किया है।[169] इससें यह प्रमाणित होता है कि कुछ स्त्रियाँ शिक्षा के माध्यम से भी सम्मान प्राप्त करती थी।[170]

अधीतकालीन स्रोतों से पता चलता है कि विद्यार्थी वैदिक, धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त स्मृतियाँ[17] इतिहास और पुराण पढ़ते थे।[172] वानप्रस्थी वैखानस-सूत्र[173] का अध्ययन करते थे। कुछ अन्य विद्यार्थी नास्तिक सम्प्रदायों के शास्त्र[176] का अध्ययन करते थे। मिलिन्दपन्ह से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विद्यार्थी उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कोशकला, छन्दशास्त्र, स्वर विज्ञान, श्लोक, व्याकरण, निरुक्त (व्युत्पत्तिशास्त्र), ज्योतिष, शरीर पर मांगलिक चिन्हों का विज्ञान, शकुन विज्ञान, स्वप्नों और ग्रहों से शकुनों का अर्थ निकालने का विज्ञान आदि विषयों का भी अध्ययन करते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तीनों वेदों के ज्ञान, अर्थशास्त्र, अन्वीक्षिकी और दण्डनीति को सबसे महत्वपूर्ण विद्याएँ बतलाया गया है।[177] उपर्युक्त चार विद्याओं के अतिरिकत प्रत्येक राजकुमार को सामरिक प्रशिक्षण भी दिया जाता था। वह इतिहास का भी अध्ययन करता था। उस समय इतिहास में पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका

(कथायें), उद्धरण (सिद्धान्तों के उदाहरण रूप कथाएँ), धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सभी विषयों का अध्ययन सम्मिलित था। मिलिन्दपन्ह के अनुसार क्षत्रिय हाथियों, घोड़ों, रथों को चलाना, धनुष और खांडा चलाना, युद्ध कला, दस्तावेजों और मुद्राओं के विषय में भी पूरा ज्ञान प्राप्त करते थे। इसी ग्रंथ में लिखा है कि राजा मिलिन्द श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक दर्शन, गणित, संगीत, आयुर्वेद, धनुर्विज्ञान, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, इन्द्रजाल, कारण-कार्य संबंध, मंत्र-तंत्र, युद्ध-कला, कविता और मुद्रा-विज्ञान इन 19 कला और विज्ञानों के ज्ञाता थे।[178]

दिव्यवदान से हमें ज्ञात होता है कि वैश्य विद्यार्थी लेखन कला, गणित, मुद्राशास्त्र, ऋणनिधि, मणि-परीक्षा और अश्व-हस्त विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करते थे वैश्यों और शूद्रों को कृषि विज्ञान, पण्यशास्त्र और पशुपालन विज्ञान सीखना पड़ता था।[179] मनु के अनुसार वैश्यों को मणियों, मोतियों, मूँगों, धातुओं, वस्त्रों, इत्र, मसालों, बीजों को बोने का ढंग, मिट्टी के विभिन्न प्रकार, नाप-तोल, पण्य-वस्तुओं के लाने व ले जाने में छीजन (हानि), पशुपालन सेवकों के वेतन, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न देशों के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।[180]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में ये शिक्षाएँ प्रचलित थीं जिनसे व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ होगा। विशेषकर वैश्यों द्वारा ग्रहण की जाने वाली विभिन्न व्यावसायिक औद्योगिक तथा कलात्मक शिक्षाओं ने निश्चिय ही व्यक्ति, संगठन तथा राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा। लगभग छठी शताब्दी ई0पू0 से शिल्पों में विशिष्टीकरण[181] प्रारम्भ हो गया था। प्रत्येक कार्य विशेषज्ञ करने लगा था, कच्चे माल की जानकारी हो गयी। श्रेणी संगठित होने लगे थे, तदन्तर जब वस्तुओं की बाजार में माँग बढ़ी तो शिल्पों में विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिला। यातायात के साधनों का विकास तथा

विदेशों में बढ़ती प्रतियोगिता के कारण वस्तुओं में सुधार आवश्यक हो गया, अंततः राज्यों द्वारा सरक्षण दिये जाने के कारण शिल्पों में विशेष उन्नति हुई और इनकी उन्नति से सरकार को शुल्क के रूप में अधिक आय प्राप्त होने लगी। इन बातों की चर्चा आगे के अध्याय में 'नगरीकरण' के अंतर्गत विस्तार से की जायेगी। इस प्रकार शिक्षा द्वारा प्राप्त सम्पत्ति ने भी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित किया होगा। अतः स्पष्ट है कि सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अतः सामाजार्थिक परिवर्तन सदैव परस्पराच्छादी रहे।

****

1 तु0 - सुकुमार दत्त, अर्ली बुद्धिस्ट मोनेशिज्म; श्रादेर ऊबरदेन शतानन्ददेर ईन्डिशेन फिलोजोफी त्साइत महावीरस उन्द बुद्धस, ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ0 327.

2. दृ0 - बैशम, (पुनर्मुदित 1981), पृ0 101-104.

3. गीता 16.8, ''असत्यम् प्रतिष्ठम् ते जगदाहुरनीश्वरम् अपरस्पर-सम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्''

4. दृ0 - आरिजेन्स ऑव बुद्धिज्म, पृ0 351.

5. दृ0 - सर्वदर्शन संग्रह (आनन्दाश्रम प्रेस, 1928), पृ0 1-5, तु0 नैषधीय चरित 17वाँ सर्ग।

6 तु0 - पालि डिक्शनरी (पालिटेक्स्ट सोसायटी).

7. अर्थशास्त्र (त्रिवेन्द्रम संस्करण), जिल्द-1, पृ0 27.

8. रामायण (निधि सागर प्रेस, बम्बई, 1930) 2, 108.

9. पाणिनि 4, 4, 60.

10. ''कौन जानता है'', इसका अर्थ है- किसी का भी विशिष्ट ज्ञान नहीं है कि वह अतीन्द्रिय जीव आदि का बोध प्राप्त करे और उनके ज्ञान का कुछ फल भी नहीं है।''

11. चार कोटियाँ इस प्रकार है- अस्ति (है), नास्ति (नहीं है), अस्ति च नास्ति च (है और नहीं है) नास्ति न च नास्ति (न है न नहीं है).

12. बाशम (पुनर्मुद्रित 1981, पृ0 8-9.

13. दीघनिकाय (1.47).

14. मिलिन्दपन्हो (4-5).

15. अगुत्तर (तीसरा, 383).

16. सयुक्त निकाय (तीसरा, 69; पाचवाँ 126).

17. मज्झिम (1.513).

18. जातक (पाचवाँ 227).

19. जातक (छठवाँ पृष्ठ-229), बाशम (1981), पृ0 228.

20. बशम - अध्याय 12.

21. ये एक शैलोत्कीर्ण भव्य गुफायें हैं.

22. बाशम पृष्ठ 280-283.

23. आजीविकों से सम्बन्धित सूचना एवं विवरण का स्रोत बाशम (पुनर्मुद्रित 1981) "हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन ऑफ द आजीविक्स नामक ग्रंथ है.

24. राहुल सांस्कृत्यायन, 'बुद्धिस्ट डायलेक्टिक्स, बुद्धिज्म ए मार्क्सिसस्ट एप्रोच, पृ02-3.

25. वही,

26. डी0डी0 कौशाम्बी, ऐन इंट्रोडॅक्शन टु स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 157.

42. दीघनिकाय 1.90-61, 1.99; 1.103; अंगुत्तर 5. 327-28.

43. शर्मा आर0एस0, प्रारम्भिक भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास.

44. जातक 4, 167, 6, 479.

45. डायोडोरस 2, 36

46. ओम प्रकाश - फूड एंड ड्रिंक्स इन एंशियेंट इंडिया, पृ0 34.

47. सुत्तनिपात, पी0टी0एस0, पृ0 296-97.

48. बौधायन धर्मसूत्र, 1, 10, 4.

49. एस0के0दास, द इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ एंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1944, पृ0 110-11.

50. जातक, 1.230. अगुत्तर निकाय, 1.251. दीघनिकाय 2, 69. मज्झिम निकाय, 39.

51. रोमिला थापर (1982), ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियास, पृ0 65.

52. देखिए, बी0एस0 अग्रवाल, (अनु) (1955), पृ0 130-31.

53. आर0एस0 शर्मा (1983) पृ0 89-134.

54. एडवर्ड कोन्जे, बुद्धिज्म, पृ0 123.

55. डॉ0 जयशंकर मिश्रा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 718.

56. अष्टाध्यायी, 4, 3, 98. वासुदेवार्जुनाभ्यां तुन्।

57 महाभाष्य, 3, 2, 111.

58. वही, 6.3.5 .

59. वही 2.2.24, सकर्षण द्वितीययस्य बलं कृष्णस्य वर्द्धताम्; 2.2.34, प्रासादे धनपति राम केशवानाम्।

60. अष्टाध्यायी, 2.4.13.

61. लिस्ट ऑव ब्राह्मी इन्स्क्रिप्शन्स, सं0 669.

62. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इस्क्रिप्शन्स, पृ0 90.

63. लिस्ट ऑव ब्राह्मी इन्स्क्रिप्शन्स सं0 1112.

64. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय 66.

65. वही, आदिपर्व 218.2; द्रोणपर्व, 97.36; उद्योग पर्व 707.

66. गीता, 10.37, वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनन्जयः ।

मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।

67. भागवत पुराण, 9.9.40.

68. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट ईस्क्रिप्शन्स, पृ0 91.

69. डी0सी0 सरकार, 'वैष्णविज्म', द एज ऑफ इम्पिरियल यूनिटी, सम्पादक, आर0सी0 मजूमदार, पृ0 440.

70. महाभारत, शान्ति पर्व, 345.7, यजाति वैपितृन् साधो नारायण विधौ कृते।

एवं स एवं भगवान् पिता-माता पितामहः ।।

71. वही, पृ 37., आर0जी0 भण्डारकर, वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत, अनु0 माहेश्वरी प्रसाद, पृ0 39.

72. लूडर्स लिस्ट, नं0 14.

73. सुवीरा जायसवाल, द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑव वैष्णविज्म पृष्ठ 79-तथा 83.

74. अष्टाध्यायी, 5.2.76 पर भाष्य, 130 बी0एन0 पुरी, इण्डिया इन द टाइम ऑव पतजलि, पृ0 188.

75. महाभारत, शांति पर्व, 349.64.

साख्यं योगः पान्चरात्रं वेदाः पाशुपतंतथा ।

ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै ।।

76. वही, 349.67. उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्राह्मणः सुतः ।

उक्तवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ।।

77. वायुपुराण, अध्याय 33 : लिंग पुराण, अध्याय 24.

78. ए कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इण्डिया, वाल्यूम 2, पृ0 401.

79. डी0सी0, सरकार, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शान्स, पृ0 126.

80. ए कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इण्डिया, वाल्यूम 2, पृ0 401.

81. डी0एन0 झा, ऐंश्येंट इण्डिया, ऐन इन्ट्रोडक्ट्री आउटलाइन, पृ0 90.

82. डॉ0 भारती राज, प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन, पृ0 114.

83. धर्म परिवर्तन द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन की बात आधुनिक संदर्भ में की गयी है देखिए - एस0सी0 दुबे, इण्डियन विलेज, पृ0 34.

84. एपिग्रैफिया इंडिका, वाल्यूम 7, पृ0 53-55.

'धेनुकाटका यवनस सिंहधयान थंभो दानं'।

85. वही, 'धेनुकाटका यवनस'.

86. आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑव वेस्टर्न इण्डिया, वाल्यूम 4,

87. एपिग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 8, पृ0 90.

'सिध औतराहस दत्तामितियकस योणकस धर्मदेव सुतस इन्द्राग्निदत्तस धंमात्मा इमं लेणं' ।

88. वही.

89. स्टेनकोनों, खरोष्टी इंसक्रिप्शन्स, कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम् वाल्यूम 2, पार्ट 1. पार्ट 1. पृ0 39-41.

डी0आर0. भण्डारकर, फारेन एलीमेन्ट इन द हिन्दू पापुलेशन, द इण्डियन ऐंटीक्वेरी, वाल्यूम 40, जनवरी 1911, पृ0 13.

90. एपीग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 8, पृ0 83.

.,.......शकाग्निवर्मण: दुहित्रा गणपकस्य रेमिलस्य भार्यया, गणपक च विश्ववर्मस्य मात्रा, शकनिकया उपासिकया विष्णुदत्तया ...., भेषजार्थ अक्षयनीवी प्रयुक्ता।

91. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, भाग 1, पृ0 113.

92. वही.

93. वही, पृ0 117.

94. जे0एन0 बनर्जी, डेवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकनोग्रैफी, 251, पृष्ठ 117. भास्कर चट्टोपाध्याय, द एज ऑव द कुषाणज, ए न्यूमिस्मटिक स्डटी, पृ0 182.

95. सहेत महेत, कुर्रम कावर कैस्केट तथा पेशावर कैसकेट अभिलेख उसके बौद्ध होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है।

डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, पृ0 144.

96. ब्रिटिश म्यूजियम कैटलॉग, 25, 5.

97. जर्नल ऑफ बाम्बे ब्रांच ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी, वाल्यूम 13. पृ0 104, डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शास, भाग 1, पृ0 90.

98. डी0डी0 कौशाम्बी, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 261.

99 एपिग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 8, पृ0 78.

''सिद्धं राज्ञः क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहयानस्य जामात्रा दीदीकपुत्रेण उषवदातेन त्रिगोशतसहस्त्रदेन .... देवताभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च षोडशग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मणशत साहस्त्री भोजापयित्रा प्रभासे-पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्याप्रदेन.....।

100. एपिग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 8, पृ0 85-86; डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, भाग 1, पृ0 164.

'दीनीक पुत्रस उषवदातस क्रदुविनिय दखमित्राय देयधम ओवस्को'

101. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, पृ0 165-166.

102. डी0आर0 भण्डारकर, फॉरेन एलीमेंट इन द हिन्दू पापुलेशन; द इण्डियन एण्डीक्वेरी, जनवरी 1911, पृ0 14.

103. एपिग्रैफिया इण्डिका, भाग 8, 44.

104. स्मिथ्स कैटलॉग ऑव द क्वायन्स इन द इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता, पृ0 68, भास्कर चट्टोपाध्याय, द एज ऑव द कुषाणाज, ए न्यूमसमेटिक स्टडीज, पृ0 211-12.

105. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, भाग, पृ0 125.

106. ब्रिटिश म्यूजियम कैटेलॉग, पृ0 25.7.

107. भास्कर चट्टोपाध्याय, द एज ऑफ कुषाणाज, ए न्यूमसमेटिक स्टडी, पृ0 226.

108. जे0एन0 बनर्जी, डेवलपमेंट ऑव हिदू आइकनोग्राफी, पृ0 146.

भास्कर चट्टोपाध्याय, पृ0 179.

109. भास्कर चट्टोपाध्याय, द एज ऑफ द कुषाणाज, ए न्यूमसमेटिक स्टडी, पृ0 146.

110. डी0आर0 भण्डारकर, 'फारेन एलीमेंट इन हिन्दू पापुलेशन, द इण्डियन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम 40, 1911, पृ0 17, 18.

111. मनु0 3, 178 तथा 181.

112. मनु0 8, 266.

113. मनु0 2, 238. श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।

अन्त्यादपि परं धर्म स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।

114. महाभारत, 12. 306. 85.

प्राप्य ज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद्वा,

वैश्याच्छूद्रादपि नीचादप्यभीक्ष्णम् ।

श्रृद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं,

न श्रद्धिनं जन्ममृत्यु् विशेषताम् ।।

115. महाभारत, 12. 314. 45-46. 'श्रावयेत्वतुरोवर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।

वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यमहतस्मृतम्।।

116. महाभारत 12. 306. 87.

117. मनु0 3, 69-70; याज्ञ0 9, 121; महाभारत 12, 60, 37; मार्कण्डेय पुराण 28, 7-8, ब्रह्माण्ड पुराण 3, 12, 19.

118. महाभारत, शान्तिपर्व 60, 37-38.

119. महाभारत, शान्तिपर्व, 60, 39-43.

120 याज्ञवल्क्यस्मृति 3, 262; वृहस्पतिस्मृति, प्रायश्चित, 60.

121. वृहस्पति, संस्कार 101. 154.

122. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येण्ट इण्डिया, पृ0 273.

123. याज्ञवल्क्यस्मृति 1, 121; वायुपुराण 2, 13, 49;, मत्स्यपुराण 17, 63-64, 17, 70.

124. आर0ए0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 72.

125. वृहस्पतिस्मृति, संस्कार, 288; उद्धृत, आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 273.

126. सुवीरा जायसवाल, द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑव द वैष्णविज्म, पृ0 155.

127. महाभारत, 12, 285, 28.

128. महाभारत, शांतिपर्व 296, 12-16.

129. भागवत पुराण, 7, 7, 54-55.

130. भागवत पुराण, 3.33.7.

131. भगवद्गीता 9, 32; भागवत पुराण 7.7, 54-55, 11.5.4.

132. भागवत पुराण, 5.1.35.

महाभारत, आश्वमेधिक पर्व 117.2.

133. महाभारत आश्वमेधिक पर्व, 116, 21.

134. छाँदोग्य उपनिषद्, 4.4.2, "उपनिषदों से विदित होता है कि सत्यकाम जाबालि अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान और ज्ञानी था। अपने बाल्यकाल में वह शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त हारिद्रुमत गौतम के आश्रम में गया। आचार्य ने उसे अपना शिष्य बनाने के पहले गोत्र के विषय में पूछा तो उसने अपने को सत्यकाम जाबाल बताया। जाबाल उसकी माँ का नाम था और सत्यकाम स्वयं उसका नाम। उसे अपने पिता के बारे में ज्ञात नहीं था कि कौन उसका पिता था, क्योंकि यौवनावस्था में जब उसकी माँ परिचारिणी (सेविका) के रूप में यत्र-तत्र काम कर रही थी, तब वह उत्पन्न हो गया था। उसकी माँ भी यह नहीं जानती थी कि वह किस गोत्र का था और किससे उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसने सत्यकाम से कहा था कि वह अपने नाम के साथ उसका ही नाम जोड़ ले। आचार्य ने जब उसके विषय में इस तथ्य को जानना चाहा तो वह उसके इस सत्य वचन पर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि जो अब्राह्मण है, ब्राह्मण-गुण-स्वभाव से रहित है, वह इस तरह नहीं कह सकता। होमार्थ समिधा ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करके तुम्हें आचार्य-कुल-वासी बनाऊँगा। तुममें यह बहुत बड़ा गुण है कि तुम सत्य से विचलित नहीं हुए।"

135 वसिष्ठ धर्मसूत्र 11, 71-74, व्यूलर, सेकेट लॉज ऑव द आर्याज पार्ट-2, पृ0 58.

136. वसिष्ठ धर्मसूत्र 11.75; आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.1.1.28.

137. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.1.2, 5-6. आपस्तम्ब गृहयसूत्र 1.19.8.9.

138. बौधायन धर्मसूत्र, 1.8.16.16.

139. बौधायन धर्मसूत्र 1.1.1.10; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 3.11.

140. वसिष्ठ 10.4; ब्यूलर, सेक्रेड लॉज ऑव द आर्याज, भाग 2, पृ0 146.

141. बौधायन 1.5.10.26; ब्यूलर, सेक्रेड लॉज ऑव द आर्याज, पृ0 175.

142. वसिष्ठ, 11, 76-79.

143. वसिष्ठ, 3.2, सावित्री पतितों के लिए ब्रात्यस्तोम, उद्यालक प्रायश्चित तथा अन्य प्रायश्चितों का विधान किया गया था।

144. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 2, 4, 25; बौधायन 1, 2, 3, 41.

145. छान्दोग्योपनिषद, 53.6, 5.11.5. वृहदारण्यकोपनिषद् 5, 3, 6, 3, 7, 1, 3, 7, 23.

146. जातक सं0 377.

147. जातक सं0 498.

148. उद्धृत, विन्टरनित्स, 'ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर 2, 286.

149 ऋग्वेद 1, 17, 5, 28, 8, 91, 9, 81. और 1, 39, 40.

150. वृहदारण्यक उपनिषद 4, 4, 18.

151. ए0एस0 अल्टेकर, पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0 198.

152. पारस्कर गृह्यसूत्र 2, 8, 3; शांखायन गृह्यसूत्र 4, 27; वसिष्ठ धर्मसूत्र 3, 34; बौधायन 4, 5, 4; आपस्तम्ब 2, 11, 290; में शूद्र तथा स्त्री की हत्या के लिए एक ही प्रायश्चित निर्धारित किया गया है।

153. गीता 9, 32.

154. शतपथ ब्राह्मण 14.1.1.31. 'स्त्रीशूद्रः श्व कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत्।'

155. ए0एस0 अल्टेकर, पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन.

156. वसिष्ठ धर्मसूत्र 17.59; बौधायन ध0सू0 4, 1, 14.

गौतम ध0सू0 18, 20.

ओम प्रकाश, "प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास", अल्पायु में कन्याओं का विवाह करने की धारणा के पीछे सम्भवतः दो प्रमुख कारण थे। पहला कारण यह था कि अनेक कन्याएँ जो बौद्ध और जैन संघों में प्रविष्ट तो हो जाती थी किन्तु वे ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने में असमर्थ रहती थी जिससे समाज में उनकी बहुत निंदा होती थी। इसलिए कन्याओं का विवाह तेरह या चौदह वर्ष की अवस्था में होने लगा और उनका विवाह उतना ही आवश्यक समझा जाने लगा जितना कि पुत्रों का उपनयन संस्कार। दूसरा कारण यह था कि जनता में यह भावना घर कर गयी थी कि अविवाहित

स्त्री का विवाहित स्त्री की अपेक्षा समाज में अधिक जोखिम उठानी पड़ती है।

157. थेरी गाथा, 54, 56, 73.

राजवंश से सम्बन्धित गुत्ता, अनोपमा, सुमेधा तथा संघमित्रा ने सम्पत्ति तथा प्रलोभन को अस्वीकार कर भिक्षुणी जीवन स्वीकार किया। थेरी गाथा 54, 56, 73; इसी प्रकार कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की पुत्री जयन्ती ने राजसी पोशाक तयाग कर भिक्षुणी के वल्कल धारण किये।

158. थेरी पटाचारा श्रावस्ती के सेठ की कन्या थी- थेरीगाथा, 47.

159. थेरीगाथा 22, श्रावस्ती के राजपुरोहित ब्राह्मण की कन्या दंतिका के भिक्षुणी बन जाने का प्रसंग प्राप्त होता है।

थेरीगाथा 11, मुक्ता कोशल जनपद के दरिद्र ब्राह्मण की कन्या थी।

160. थेरीगाथा, 70.

161. थेरीगाथा, 63.

162. थेरीगाथा, 21.

163. थेरीगाथा, 65.

164. थेरीगाथा, 66.

165. थेरीगाथा, 41.

166. थेरीगाथा, 38.

167. उद्धृत, आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येण्ट इण्डिया, पृ0 135.

168. पतजलि, 3, 822. उपेत्याधीते अस्या: सा उपाध्याया।

169 पाणिनि, ˊ6, 2, 46, छात्र्यादय: शालायाम् ।

170. उद्धृत, आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येण्ट इण्डिया, पृ0 135.

171. मनुस्मृति, 2, 10, 3, 232.

172. वही, 3, 232.

173. वही, 6, 21.

174 वही, 12, 95.

175. मनुस्मृति, 9, 329.

176. वही, 7, 43.

177. शामशास्त्री अनुवाद अर्थशास्त्र, पृ0 11.

178. मिलिन्दपन्ह 1, 9; 4, 3, 26.

179. दिव्यावदान, 26, 99-100.

180. मनु, 3, 329-332.

181. ए0एन0 बोस, सोशल एंड रूरल इकोनामी ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ0 235-36.

****

अध्याय - चतुर्थ

सामाजार्थिक परिवर्तन का स्वरूप

1. नगरीकरण

2. सामाजिक रूपान्तरण

अधीतकालीन सामाजार्थिक परिवर्तन का स्वरूप मुख्यतः दो तत्वों में उद्घाटित होता है:-

1. नगरीकरण

2. सामाजिक रूपान्तरण

1. नगरीकरण

''सभ्यता को प्रायः नागरिक जीवन या उसकी देन के रूप में माना जाता है। इस दृष्टि से मनुष्य के विकास में वह अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण थी जब कृषि और पशुपालन के द्वारा यह सम्भव हुआ कि अन्न का उत्पादन उसके तत्कालिक उपभोग से अधिक हो और इस अतिरिक्त उत्पादन के विनिमय के द्वारा उपभोग्य सामग्री का वैचित्र्य विस्तार किया जा सके। इस विनिमय प्रधान अवस्था के परिणाम स्वरूप उत्पादन में विशेष योग्यता एव उत्पाद्य में समृद्धि के विकास की एक उत्तरोत्तर बृद्धिशलिनी प्रक्रिया का जन्म होता है और इस प्रकार प्रागैतिहासिक युग की दीर्घ स्थिरता या जड़ता के स्थान पर सभ्यता के इतिहास की वेगवती प्रगतिशीलता का आविर्भाव होता है। उद्योग वाणिज्य एवं नगरजीवन की परिवर्तनशीलता और विभिन्न समुदायों को पारस्परिक संपर्क और संघर्ष में डालने की योग्यता ऐतिहासिक प्रगति में महत्वपूर्ण कारण रहे हैं।''[1]

नगर एक ऐसा विशाल जन समूह है जिसकी जीविका के साधन उद्योग एवं व्यापार है। वह व्यावसायिक उत्पादनों के विनिमय द्वारा ग्राम से खाद्यान्न प्राप्त करता है। नगर तत्व एवं ग्राम तत्व का यह प्रधान भेद भारत वर्ष में चिरकाल से चला आ रहा है। इस देश में नगरों के आविर्भाव की यह प्राचीनता ताम्रश्म काल में हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो नामक स्थानों पर बने हुए नगरों के सन्निवेश एवं उनके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के दृष्टांतों से सिद्ध हो जाती है।

महाजनपदों के काल से भारतीय नगरीकरण के इतिहास में युगान्तर का प्रवर्तन होता है। उत्तर पश्चिम में तक्षशिला से लेकर दक्षिण में शूर्पारक तक भारत में नगर जाल विस्तृत था। द्वितीय नगरीकरण की यह विशाल प्रक्रिया, राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियों के कारण सम्भव हुआ।

छठीं शताब्दी ई0पू0 में राजनीतिक एकता का आभाव था। देश अनेक राज्यों में विभक्त था। पालिग्रंथों में उन्हें 'महाजनपद'[2] कहा गया है तथा उनकी संख्या 16 बताई गयी है। अंगुत्तर निकाय में काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, मत्स्य, सूरसेन, अस्मक, अवन्ति गांधार और कम्बोज आदि नामों से उनको गिना गया है।[3] राजकीय परिस्थितियों के कारण प्रत्येक ने अपनी राजधानी अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी सुरक्षित तथा आवश्यकताओं के अनुकूल भाग में बनाई। उसे रक्षा के साधनों से युक्त[4] कर राजप्रसादों, प्रधान राजभवनों एवं कार्यालयों की स्थापना के द्वारा अलकृत भी किया। इस प्रकार की योजना ने खाइयों एवं दीवारों से घिरे हुए अनेक दुर्गो को जन्म दिया। कपिलवस्तु, कुशीनगर, वैशाली, श्रावस्ती तथा पाटलिपुत्र आदि इस काल के प्रधान नगरों का आविर्भाव सर्वप्रथम इसी रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त धार्मिक एवं शिक्षण केन्द्रों में भी कालान्तर में नगर तत्व के क्रमिक उद्भव की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

लोहे के परिचय एवं उसके बहुविध प्रयोग के कारण इस काल में एक व्यापक स्तर पर सुनियोजित पद्धति के अनुसार नगर एवं नगर निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। लौह के फलस्वरूप इस समय से "परिखा भेद, प्रकार भेद तथा प्रकार अवयव (गोपुर, प्रतोली, अट्टालक, इन्द्रकोश एवं देवपथ) आदि वास्तुगत अंगोंसे सुशोभित उन्नत एवं सुदृढ़ पर कोटे के निर्माण की परम्परा आरम्भ हुई।"[5] पार्णिनि ने

लौहकार तथा कोयले की अगार से दहकती भट्ठी (कुटिलिका) का उल्लेख किया है।[6]

नगरीकरण की प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण प्रेरक था - आर्थिक तत्व, जिसकी पृष्ठभूमि में लोहे की भूमिका का उल्लेख सर्वप्रथम किया जाना चाहिए, जो आदि पलि साहित्य एवं पुरातात्विक स्रोतों से स्पष्ट होता है। आर0एस0 शर्मा ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है।[7] जिसका सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है- उनके अनुसार मध्यगंगा के क्षेत्र में हुए पुरातात्विक उत्खननों से स्पष्ट है कि लौह युग का उत्कर्ष बृद्ध की कर्मभूमि बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश ने ईसा पूर्व छठीं पांचवी शदी में हुआ। राजघाट प्रहलादपुर, चिराँद, वैशाली, चंपा तथा अन्यत्र के उत्खननों से स्पष्ट है कि एन0बी0पी0 संस्कृति इस क्षेत्र में विकसित हुई। इस संस्कृति का प्रारम्भिक दौर उन्होंने 600 से 300 ई.पू. माना है तथा दूसरा दौर 300 से 100 ई.पू.। यह दूसरा दौर भौतिक संस्कृति के अभूतपूर्व विकास से संबद्ध है किन्तु आरम्भ से ही यह संस्कृति लौह युग से संबंधित होने के कारण कृषि के अभूतपूर्व विकास में सहायक हुई। इसके पूर्व ताम्रयुग की संस्कृति के अवशेष पांडुराजारढीवी, चिरांद, ओरियुप तथा सोनपुर से मिले है। जिनमें जंगल जलाकर बनी छोटी बस्तियों में रहने वाली जीवन पद्धति प्रकट होती है। जिसमें निर्वाहाधान की फसल एवं पालतू पशुओं के मांसाहार पर निर्भर था। इस संस्कृति के लोगों के औजार पत्थर के थे, लेकिन साथ-साथ इन्हे ताँबे का भी ज्ञान था। किन्तु इनकी प्रविधि बड़े पैमाने पर कृषि एवं अद्योग के अनुरूप नहीं थी। तदुपरान्त छठीं पाँचवी शताब्दी में लोहे की प्रविधि और उससे बने औजारों की सहायता से एक नई पद्धति का प्रारम्भ हुआ। इन लोहे के औजारों से जंगल काटे गये। लोहे के हल से खेती होने लगी। धान की खेती में धान के पौधों के

प्रत्यारोपण की पद्धति से पैदावार बढ़ी। उत्पादन के अधिशेष का उपयोग व्यापार में सहायक हुआ। इससे नगरों का विकास हुआ और ये नगर बाजारों के विकसित केन्द्र हुए।इस प्रकार नगरीकरण उत्पादन में समृद्धि के कारण सम्भव हुई।

लोहे के हल द्वारा खेत की जुताई, बीज-वपन, सिंचाई, कटाई आदि के अनेक विवरण पालि साहित्य में प्राप्त है।[8] भूमि पर लगे हुए कर को 'बलि' एवं 'भाग' कहा जाता था, एवं इसकी दर नियत थी। जैसे, गौतम ने यह दर 1/6, 1/8 ओर 1/10 बताई है, जो भूमि की उर्वरता के अनुसार रही होगी। अनेक प्रकार के अन्न का उल्लेख भी साहित्य से ज्ञात है।[9] कृषि में पशुओं का उपयोग अत्यन्त सहायक था। चुल्लवग्ग में तुल (ढेकुल), करकटक (पुर) तथा चक्कवट्टक (रहट) का सिचाई के साधन के रूप में उल्लेख है।[10] खेती की व्यवस्था का पर्याप्त अनुमान पाणिनि की अष्टाध्यायी से होता है।''[11]

मौर्यो की अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यन्त विकसित रूप मिलता है। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की भूमि, उसके स्वाभित्व, सिंचाई के साधनों का, कृषक मजदूर एव उनकी मजदूरी का, भूमि के हस्तांतरण, राज्य की कृषि योग्य भूमि पर होने वाली उपज एवं भू-राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों आदि के विषय में पर्याप्त सूचनाएँ निबद्ध है। भूमि पर व्यक्तिगत स्वाभित्व के उदाहरण लगभग छठीं शताब्दी ई.पू. से ही मिलने लगते है।[12] अर्थशास्त्र[13] तथा मनुस्मृति[14] में भी इसके स्पष्ट उदाहरण मिलने लगते है। बौधायन के अनुसार 6 निवर्तन भूमि एक कृषक परिवार के निर्वाह के लिए पर्याप्त थी।[15]

आर्थिक क्षेत्र में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका होने से कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार होना स्वाभाविक लगता है। मेगास्थनीज ने लिखा है कि निजभूमि पर काम करते हुए किसी भी किसान को शत्रुसेना हानि नहीं पहुँचाती थी क्योंकि इस वर्ग के लोग सर्वसाधारण जनता द्वारा हितकारी माने जाने के कारण सब हानियों से बचाये जाते थे।[16] उसने यह भी लिखा है कि दूसरी जाति में किसान लोग है जो दूसरों से संख्या में कहीं अधिक है, पर युद्ध करने तथा अन्य राजकीय सेवाओं से मुक्त होने के कारण वे अपना सारा समय खेती में ही लगाते है।[17]

कृषि के लिए सिंचाई की समुचित व्यवस्था के प्रति शासन सचेष्ट था ऐसे उदाहरण महाभारत[18], मेगास्थनीज[19], स्मृतियों[20] आदि में प्राप्त होते हैं। पुरातात्विक साक्ष्य भी[21] इसकी तरफ इगित करते है।

अतः स्पष्ट है कि अब कृषि, व्यवस्था पर्याप्त संपुष्ट होने लगी थी। जिसने नगरीय व्यवस्था को जन्म देने में सहयोग दिया। कौशाम्बी वाराणसी, चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली, पाटलिपुत्र तथा उज्जयिनी इस युग के प्रमुख नगर थे। ये नगर कृषि-व्यवस्था एवं उद्योग-धन्धों से पर्याप्त सम्पन्न हो रहे थे।

नगर प्रारम्भिक दशा में वस्तुतः ग्राम ही थे लेकिन जिन कारणों से उनमें नगर तत्व का क्रमिक आगमन सम्भव हुआ उनमें वाणिज्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। नदियों एवं समुद्रों के तट पर सुप्रसिद्ध मार्गो पर बसी हुई साधारण बस्तियों का नगर-रूपान्तर व्यपारिक सम्बन्ध के कारण नितान्त स्वाभाविक था।

इस प्रकार नगरीकरण को बढ़ावा देने वाले अनिवार्य तत्वों की रूपरेखा निम्नलिखित बिन्दुओं के अर्न्तगत प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे-

1. व्यापार

2 उद्योग - धन्धे

3. मुद्रा (विनिमय का साधन)

4 बाजार

लगभग 6वी शताब्दी ई.पू. में भारत व्यापार एवं वाणिज्य की दृष्टि से काफी प्रगतिशील था। इस युग में आन्तरिक व्यापार तो समुन्नत था ही, विदेशों से भी घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस काल की प्रमुख व्यपारिक वस्तुएँ रेशम, मलमल बारीक कपड़े[22] चाकू-छूरी, अस्त्र-शस्त्र, कम्बल सुगन्धित वस्तुएँ, औषधिया, हाथी दांत की वस्तुएं[23] जवाहरात और सुवर्ण निर्मित वस्तुएं थी।[24] इस समय स्थानीय व्यापार भी खूब किया जाता था। बाजरों में दुकानों पर सभी प्रकार की वस्तुओं की बिक्री होती थी। नगरवासियों के दोनों किनारें पर आपण (दुकानें) रहा करती थी, जिनमें नगर वासियों की आवश्यकतानुसार विक्रय के निमित्त वस्तुएँ खूब सजाकर रखी जाती थी।[25] जातकों में उल्लेख मिलता है कि स्थानीय व्यापार के लिए खाद्य पदार्थो - मांस, शराब, वस्त्रों आभूषणों, फूलों, सुगन्धित इत्र, लकड़ी की वस्तुओं, धातुओं और धातुओं से निर्मित सभी आश्यक वस्तुओं की दुकानें थी[26] जो कि आवश्यक वस्तुओं का समुचित प्रबन्ध करते थे। द्वार ग्रामों पर रहने वाले उत्पादकों से भी व्यापारिक वस्तुओं का प्रबन्ध किया जाता था।[27] नगर के व्यापारी निकटवर्ती ग्रामों के उत्पादकों से माल क्रय कर अपने ढंग से बाजार में उसकी बिक्री करते थे।

बुद्व कालीन भारत के देशी व्यापार में सूती कपड़ों का विशेष महत्व था। वाराणसी के व्यापारी प्रमुख रूप से सूती कपड़ों, मलमल और चन्दन का व्यापार करते थे।[28] उन दिनों चन्दन चूर्ण की काफी मांग थी, इस लिए अन्तर्देशीय व्यापार में चन्दन का विशेष स्थान था।[29]

प्रारम्भिक अवस्था में नगर आवागमन के केन्द्र थे अधिकांश शहर नदियों के किनारे पाये जाते थे। जातकों से ही ज्ञात होता है कि उत्तरापथ से घोड़े के व्यापारी व्यापार हेतु वाराणसी आते थे[30]। इससे स्पष्ट है कि इस युग में वाराणसी व्यापार का एक बड़ा केन्द्र हो चुका था। इस युग में उत्तरी भारत ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। पूर्वी भारत में असम से घोड़े और हाथी दाँत से बनी मोती; मगध से पच्चीकारी के साज, चारपाइयां, रथ, सूल ओर नील के फल व्यपार हेतु आते थे।[31] बलूचिस्तान से अच्छी नस्ल के बकरे, ऊँट और खच्चर साथ ही फल की शराब और शाल आती थी।

बौद्ध साहित्य से हमें और भी वस्तुओं के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। इनमें अधिकांश वस्तुएँ ऐसी है, जो वैदिक काल से ही व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ बनी हुई थी। इनमें से कुछ है: कुत्ता, बैल[32], जानवरों की खाल, मछली, चूहा[33], शहद, गन्ना[34], चावल, जौ तिल, शराब[35], कपास, रंगा हुआ कपड़ा[36], हाथी दाँत, ऊन, सोंना, चाँदी, तांबा, हीरा विभिन्न आभूषण।[37]

बुद्ध-युग में पादप और उससे उत्पादित वस्तुओं का भी अच्छा व्यवसाय था। इसमें तगर,[38] तकोला[39], तिल[40], घी[41], चन्दन, तेल, घास कई प्रकार के इत्र[42], क्षौम, पोथक कपड़ा[43], शिवि के शाल[44], स्त्रियों की राजसी पोशाक[45], पशुओं से उत्पादित

वस्तुओं जैसे-हाथी दात और उससे निर्मित बर्तन[46], कम्बल, मांस, शंख[47] ,और जूता-चप्पल[48], का व्यापार में प्रमुख स्थान था। इनके अतिरिक्त अन्य पदार्थो में अंजन[49], संगमरमर पत्थर[50], स्वर्ण-निर्मित बर्तन, ताँबे से निर्मित बर्तन, कांस्य-निर्मित बर्तन[51], मृद्भाण्ड, तलवार, फरसा[52], चाकू, सुई आदि का अच्छा व्यापार होता था।

इस युग में विदेशी-व्यापार भी उन्नत दशा में था। यद्यपि इससे स्पष्ट पुरातात्विक प्रमाण बहुत कम मिले है, फिर भी उपलब्ध प्रमाणों से तत्कालीन भारत के विदेशी व्यपार की पर्याप्त जानकारी मिलती है। इस समय भारत और उनके पूर्वी और पश्चिमी देशों में खूब व्यापार होता था। वलहस्स जातक[53] में इस देश का सिहल के साथ व्यापार का उल्लेख आता है। वाराणसी[54], चम्पा[55], और भरूकच्छ[56] का सुवर्णभूमि के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था, तथा बावेरूजातक[57] में हम भारत और बेबीलोन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध पाते है। इसी जातक में उल्लेख है कि बनारस के कुछ व्यापारी अपने साथ वातदिग्दर्शक लेकर समुद्र-यात्रा में गए, जिसे बावेरू के लोगों ने खरीद लिया। सुप्पारक जातक[58] से ज्ञात होता है कि कुछेक व्यापारी एक समय भरूकच्छ से व्यापार के लिए जहाज द्वारा यात्रा के लिए निकले। यूनानी और भारतीय साहित्यों से ज्ञात होता है कि भारतीय नाविक बाबेल मन्देब के आगे नही जाते थे तथा लाल-सागर और भूमध्यसागर के बीच का व्यापार अरबों के हाथ में था[59]। इससे स्पष्ट होता है कि भारत का इन स्थानों से व्यापारिक सम्बन्ध था।

भारत की अनेकानेक वस्तुएँ पश्चिमी देशों में लोकप्रिय थी। मिस्र से ममी के साथ नीम तथा इमली की लकड़ी और मलमल जैसी भारतीय वस्तुएँ रखी जाती थीं। मिस्र-सम्राट तूत-अन्ख-आगोन की समाधि की जब खुदाई की गई तब उसमें से विविध प्रकार की भारतीय वस्तुएँ मिली थी।[60] यूनान में एथेंस नगर में अनेकानेक

भारतीय वस्तुऍ बिका करती थी। पश्चिम के ऐसे देशों में भारतीय पदार्थ सुप्पारक, भरूकच्छ ओर कोंकण के बन्दरगाहों से जाया करते थे। समुद्री व्यापारी अनेक विपत्ति और कठिनाइयों का सामना करते हुए भी विदेशों के साथ व्यापार करते थे। यह बात जातकों में उल्लिखित है कि कभी-कभी अनके छोटे जहाज तूफान के चपेटों को सहन करने में असमर्थ होते थे, जिसके फलस्वरूप वे टूट जाते थे और यात्रियों को अपनी जान गवानी पड़ती थी।

इस युग में व्यापारी व्यापार करने के लिए आपस में एक साथ संगठित होकर काफिले बनाकर दूर-दूर के शहरों तथा एक देश से दूसरे देश तक लम्बी-लम्बी यात्राऍ किया करते थे। इन संगठित व्यापारियों के संगठन का एक प्रमुख व्यक्ति होता था जो 'सार्थवाह' कहलाता था।[61] ये सार्थवाह व्यापारियों की चोरी, डकैती एवं अन्य खतरों से रक्षा करता था, उनको दिशा-निर्देश देता था एवं उनको रूकने के स्थान, मार्ग के जल अवरोधों और खतरों आदि के बारे में उचित जानकारी देते थे।[62] बुद्ध-काल के व्यापारी ऐसे-ऐसे सुदूरवर्ती प्रदेश में व्यापार के लिए जाया करते थे जहॉं के लिए मार्ग निश्चित नहीं थे, ऐसी व्यापारिक यात्राओं में मार्गों का ज्ञान रखने वाले 'थल-निर्यामक' साथ में रहते थे।[63] ये थल-निर्यामक नक्षत्रों एवं ज्योतिष-तत्वों के आधार पर मार्ग-निर्देशन किया करते थे। बुद्ध-काल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मार्ग थे : उत्तर से दक्षिण-पश्चिम मार्ग (श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक) उत्तर से दक्षिण-पूर्व की (श्रावस्ती से राजगृह तक) और गंगा व यमुना नदियों के प्रवाह की दिशा के साथ-साथ पूर्व - पश्चिम को जाने वाला मार्ग। व्यापार का अन्य मुख्य पृथ्वी मार्ग वाराणसी से उज्जयिनी भी था। इस मार्ग से निकलकर एक सहायक मार्ग राजगृह को जाता था तथा विदेह से गान्धार तक भी एक मार्ग बना हुआ था।[64]

व्यापार के लिए 'उत्तरापथ' एक अन्य मुख्य मार्ग था। इस मार्ग द्वारा भारत को मध्य और दक्षिणी एशिया से जोड़ा गया था तथा यह रास्ता तक्षशिला, रावलपिण्डी और पजाव के नागल नगरों से होकर गुजरता था। 'वंसजातक' के अनुसार तक्षशिला से मिथिला आने क लिए भी मार्ग बना हुआ था। 'महाउम्मग-जातक' के अनुसार मिथिला से कम्पिल राष्ट्र के उत्तर होकर पांचाल जाने का मार्ग भी था।[65]

परन्तु जातकों से स्पष्ट होता है कि सभी जगह पक्के मार्ग नहीं बने थे। कुछ म।ग भयकर जगलों से तथा कठिन मरूभूमि से गुजरते थे। इन मार्गो में पानी आदि भी कठिनाई से प्राप्त होता था। चोरों का भय बहुत था। परन्तु फिर भी धन कमाने के इच्छुक उत्साही व्यापारी विशाल मरूभूमियों और जंगलों वाले मार्गो से गुजरकर दूर-दूर के स्थानों पर व्यापार करने जाते थे। समुद्री व्यापार के लिए विशाल बन्दरगाह बनाये जाते थे। जातकों से कुछ बन्दरगाहों 'भरूकच्छ' (भड़ौच), 'सौवीर', 'कावेरिपत्तन', 'गम्भीर', 'सेरिव', 'सुप्पारक' आदि के नाम प्राप्त होते है।[66] 'वालाहस्सजातक' के पांच सौ व्यापारी नावों के द्वारा व्यापार के लिए जा रहे थे, नावें टूटने पर वे ताम्रपर्णी द्वीप में पहुँच गये। शंख नामक एक अन्य महाधनवान ब्राह्मण भी धन अर्जित करने के उद्देश्य से नौकाओं में माल भरकर 'स्वर्णभूमि' के लिए प्रस्थान करता है।[67] समुद्रों और नदियों में जहाजों और नावों के द्वारा व्यापारी अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। समुद्रों में विशाल नावों या जहाजों का प्रयोग किया जाता था जो लकड़ी के तख्तों से निर्मित होते थे।[68] समुद्री व्यापार के साथ-साथ अधिकांश व्यापारी स्थल मार्गो के द्वारा गाड़ियों में माल ले जाकर ही व्यापार करते थे। वणिक्-पथ का जाल सारे देश में फैला हुआ था। एक प्रकार के व्यापारियों का पूरा एक ही ग्राम होता था। रिचर्ड फिक[69] ने जातकों के

आधार पर तीन तथ्यों को प्रस्तुत किया है जो कि श्रेणी-संगठन के उद्भव के लिए उत्तरदायी थे-

(1) बुद्धकाल में विविध व्यवसायी वंशक्रमानुगत व्यवसाय में लगते थे और धीरे-धीरे कुशलता प्राप्त करके उसी उद्योग में लग जाते थे।

(2) बुद्धकाल में एक ही व्यवसाय का अनुसरण करने वाले एक निश्चित स्थान पर रहते थे, इसे वीथी या गली[70] कहते थे। वस्तकारों, कुम्हारों, लुहारो आदि की अपनी-अपनी वीथियाँ होती थीं, और-

(3) व्यवसायियों को श्रेणियों के मुखिया का उल्लेख जातक कथाओं में बार-बार मिलता है, यथा कुम्भकार जेट्ठक (ज्येष्टक) मालाकार जेट्ठक आदि। जेट्ठक की सामाजिक प्रतिष्ठा भी श्रेणियों के उदय का कारण बनी।

फिक महोदय के ये तर्क उचित प्रतीत होते हैं। जातक कथाओं में अठारह प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। श्रीमती राइस डेविड्स ने 'मृगपक्ख जातक' के आधार पर निम्नलिखित अठारह प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख किया है-

(1) लकड़ी का काम करने वालों की श्रेणियाँ

(2) पत्थर का काम करने वालों की श्रेणियाँ : इस श्रेणियों का सदस्य मकान के निचले भाग, पत्थर के खम्भे तथा कटावदार प्याले आदि बनाते थे।

(3) धातुओं का काम करने वालों की श्रेणियाँ : इन श्रेणियों के सदस्य लोहे का हल, कुल्हाड़ी, चाकू आदि बनाते थे और सोने-चाँदी की वस्तुएँ भी बनाते थे।

(4) बुनकारों की श्रेणियाँ : इनके सदस्य, पहनने के कपड़े बनाने के साथ-साथ महीन मलमल, रेशमी कपड़े, कम्बल, कालीन आदि भी बनाते थे।

(5) चमड़े के काम करने वालों की श्रेणियाँ : ये अनेक प्रकार के जूते तथा ठण्डे मौसम के लिए सैंडिल बनाते थे।

(6) कुम्हारों की श्रेणियाँ : इसके सदस्य अनेक प्रकार के प्याले, रकाबी बनाते थे, जो घरों में प्रयुक्त होते थे।

(7) हाथी दांत का काम करने वालों की श्रेणियाँ : इन श्रेणियों के सदस्य साधारण प्रयोग में आने वाले सामानों के अतिरिक्त महँगे नक्काशीदार गहने भी बनाते थे।

(8) रंगरेज की श्रेणियाँ : ये जुलाहों के बने कपड़ों को रंगती थी।

(9) स्वर्णकार की श्रेणियाँ : ये विभिन्न कोटियों के आभूषण बनाते थे।

(10) मछुवारों की श्रेणियाँ : इसके सदस्य नदियों से मछली पकड़ते थे।

(11) कसाई की श्रेणियाँ : इनकी दुकानों तथा बूचड़खानों का विवरण जातक-कथाओं में कई बार आया है।

(12) शिकारी तथा पशु पकड़ने वालों की श्रेणियाँ : इन श्रेणियों के सदस्य जंगल से जानवर, कंदमूल, मृग-मौंस आदि शहर में बेचा करती थीं।

(13) रसोइये तथा हलवाइयों की श्रेणियाँ।

(14) नाई तथा चम्पी करने वालों की श्रेणियाँ।

(15) माला बनाने वालों तथा फूल बेचने वालों की श्रेणियाँ।

(16) नाविकों की श्रेणियाँ।

(17) बेंत का काम करने वालों की श्रेणियाँ।

(18) चित्रकार जो मुख्यत: घर को रंगने वाले होते थे, की श्रेणियाँ।

रा0 चौ0 मजूमदार ने गौतम धर्मसूत्र, जातक, नासिक अभिलेख और जुन्नर अभिलेख के आधार पर निम्नलिखित सत्ताइस प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख किया है।[71]

1. लकड़ी का काम करने वाले (बढ़ई), जिनमें पेटिका-निर्माण चक्र-निर्माण, गृह-निर्माता तथा सभी प्रकार के वाहन बनाने वाले सम्मिलित है।[72]

2. सोना, चाँदी आदि धातुओं का काम करने वाले।[73]

3 पत्थर का काम करने वाले।[74]

4. चर्मकार।[75]

5. दन्तकार।[76]

6. ओदयंत्रिक (पन्चक्की चलाने वाले)।[77]

7. बसकट (बांस का काम करने वाले)।[78]

8. कसकर (ठठेरे)।[79]

9. रत्नकार (जौहरी)।[80]

10 बुनकर या जुलाहे।[81]

11. कुम्हार।[82]

12 तिल पिषक (तेली)।[83]

13 डलिया बनाने वाले।[84]

14. रंगरेज।[85]

15. चित्रकार।[86]

16. धंत्रिक (धान्य के व्यापारी)।[87]

17. कृषक।[88]

18 मछुए।[89]

19. कताई।[90]

20. नाई तथा मालिश करने वाले।[91]

21. मालाकार (माली)।[92]

22. नाविक।[93]

23. चरवाहे।[94]

24. सार्थ सहित व्यापारी।[95]

25 डाकू तथा लूटेरे।[96]

26. वन आरक्षी, जो सार्थो की रक्षा करते थ।[97]

27. महाजन।[98]

पाणिनि अपनी अष्टध्यायी में निम्नलिखित प्रकार के शिल्पी बताते हैं- कुलाल-कुम्भकार[99], तक्षा-बढ़ई[100], धनुषकार-धनुष बनाने वाले[101], रंजक-जो कपड़े रंगते थे[102], खनक[103], ततुवाय (जुलाहे)[104], कम्बलकारक (कम्बल बनाने वाले)[105] चमड़े का कार्य करने वाले[106], कर्मकार[107], स्वर्णकार[108], बोझा उठाने वाले,।[109]

महावस्तु से भी हमें व्यापारिक श्रेणियों का उल्लेख प्राप्त होता हैं जो निम्नलिखित है:-

1. हैरणियक (सौवर्णिक)।

2. प्रवारिका (चावर बेचने वाले)।

3. शांखिल (शंख बेचने वाले)।

4. दन्तकार (हाथी दांत का काम करने वाले)।

5. मणिकार (मनियारे)।

6. प्रास्तारक (पत्थर का काम करने वाले)।

7. कोशाविक (रेशमी और ऊनी कपड़े बनाने वाले)।

8. गन्धी।

9 तली।

10 घृत कुण्डिक (घी बचने वाले)।

11. गोलिक (गुड़ बेचनं वाले)।

12 वारिक (पान बेचने वाले)।

13. कार्पसिक (कपास बेचने वाले)।

14. दहियक (दही बेचने वाले)।

15. पूषिक (पूये बेचने वाले)।

16. खण्डकारक (खांड़ बेचने वाले)।

17. मोदकारक (लड्डू बनाने वाले)।

18. सामतकारक (आरा बनाने वाले)।

19. सवतूकारक (सत्तू बनाने वाले)।

20. फल वणिज (फल बेचने वाले)।

21. मूल वणिज (कंदमूल बेचने वाले)।

22. चूर्णकुट्ट -गंध-तैलिक (सुगंधित चूर्ण और तेल बेचने वाले)।

23. गुड़वाचक (गुड़ बनाने वाले)।

24. सोंठ बेचने वाले।

25. सीघ्रकारक (शराब बेचने वाले)।

26. शर्कर-वणिज (शक्कर बेचने वाले)।

इन श्रेणियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी श्रेणियाँ होती थी, जिन्हें महावस्तु में शिल्पायतन कहा गया है। प्रत्येक शिल्प और श्रेणी का संगठन नियमबद्ध होता था। प्रत्येक श्रेणी का प्रधान 'जेट्ठक' कहलाता था। जातकों में मालाकारों के 'जेट्ठक', लोहारों के 'जेट्ठक; डाकुओं के जेट्ठकों का उल्लेख आया है।[106] किन्हीं स्थानों पर श्रेणी और संघ-प्रधान के लिए जेट्ठक के बजाय 'प्रमुख' या 'मुख्य' का प्रयोग किया गया है।[107] संघ का प्रधान समाज में प्रमुख स्थान रखता था, धन से परिपूर्ण होता था। 'सूंचीजातक' में लुहारों का प्रधान राजा का बड़ा प्रिय तथा बड़ा धनी था। राजा के साथ ये श्रेणियाँ भी विशेष समारोह और उत्सवों में भाग लेती थी[108]। परन्तु फिर भी इन श्रेणी और संघों की सवैधानिक व्यवस्था के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। समय और परिस्थिति के अनुसार सभी महत्वपूर्ण और परिवर्तनशील निर्णय ले लिए जाते थे। संगठन आपस में सहयोग और समझौते की भावना पर आधारित रहते थे, ये आर्थिक शिल्पी अपने संघों का सफलता पूर्वक कार्य करते थे। 'अलिनिचत्त जातक' में पाँच सौ बढ़ इ शान-शौकत से रहते हुए आपस में सहयोग, संगठन, एद्भावना रखते हुए अपना व्यवसाय करते थे। श्रेणियों ओर संधों के सदस्य क्रांतिकारी निर्णय भी लेते थे। 'लौसक जातक' में एक हजार मछुओं का पूरा ग्राम था, वे अपनी व्यवस्था सुचारू रूप चलाने के लिए दो वर्गों में विभक्त हो गये। उन्हें पुनः कई वर्गों में विभक्त होते हुए देखते है, अन्त में एक परिवार को मनहूस कुल मानकर उसे निकाल दिया। इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणी के प्रधान व्यवस्था को समुचित ढंग से चलाने के लिए दण्ड भी दे सकते थे।

श्रेणियों में परस्पर सघर्ष उत्पन्न न हो तथा सभी श्रेणियों के व्यापार-व्यवसाय में पूर्ण वृद्धि हो जिससे देश का व्यापारिक स्तर उन्नति के शिखर पर पहुँचे, इसके लिए ऐसा जान पढ़ता है कि कभी-कभी सभी या कुछ श्रेण्यिाँ आपस में मिलकर अपना प्रधान चुनती थीं, जो सभी श्रेणियों का प्रमुख प्रधान और न्यायाधीश होता था, जो श्रेणियों में आपस में झगड़ा होने पर उचित न्याय करके संगठन , प्रेम, मैत्री-भावना को स्थापित करता है[109]। कभी-कभी यह राजकीय पद होता था, जिसपर 'भण्डागारिक' अमात्य संवैधानिक रूप से कार्य, करता था। 'निग्रोथ जातक' में राजा ने अपने मित्र को सभी श्रेणियों के मुकदमे करने का अधिकार प्रदान करने वाला भण्डागारिक पद दिया गया। इस तरह श्रेणियों में परस्पर संघर्ष न हो, इसका पूरा ध्यान राज्य की ओर से भी रखा जाता था। व्यापारियों के भी अपने अलग-अलग संगठन होते थे। वणिकों का प्रधान 'सेट्ठी' (श्रेष्ठि) कहलाता था।

छठीं शताब्दी ई.पू. में उद्योगों के विकास शहरों के वाणिज्यिक केन्द्र स्थापित होने, और व्यापार में महत्वपूर्ण वृद्धि होने से, कुशल व्यापार-निष्पादन एवं आसान वित्त-व्यवस्था की आवश्यकता हुयी। तत्हेतु, एक ऐसा वर्ग उदित हुआ, जिसे अधिकाशं लोग सेट्ठी या नगर सेट्ठी के नाम से जानते है। ये लोग खजांची, बैंकर, नागरिक, सम्पन्न व्यापारी और श्रेणियों के प्रमुख अथवा अध्यक्ष होते थे।[110] सेट्ठी उत्पादन नही करते थे, बल्कि उत्पादकों को वित्त (प्रायः अकेले लेकिन कभी-कभी साझे में भी) प्रदान करते थे; उत्पादकों को नियंत्रित करते थे, और थोक-व्यापार को बड़े बाजार[11] जैसे तक्षशिला[112], साकेत[113], श्रावस्ती[114], मिथिला[115], राजगृह[116], वाराणसी[117] आदि तक ले जाते थे। जहाँ तक व्यावसायिक बातों का सम्बन्ध है सेट्ठी अपने जनपद की वस्तुओं के थोक व्यापारी होते थे।[118] वे अपने जनपद की

वस्तुओं को काफिलों में शहरों तक लाकर तैयार माल के रूप में बेंचते थे। ऐसे सेट्ठी जिनके ससाधन बहुत अधिक थे, 'महाविभोसेट्ठी' कहलाते थे।[119] इसके अतिरिक्त ऐसे सेट्ठी जिनकी परम्परागत रूप से प्राप्त सम्पत्ति संस्था में 40 से 80 कोटि होती थी 'अष्टकोटिविभवसेट्ठी[120]' कहलाते थे। ये अपने अभिकर्तओं (कमन्तिकमनुस्सा)[121] दासों और नौकरों (दास-कम्भकार)[122] की सहायता से बड़ी मात्रा में लेन-देन का कार्य करते थे।

विशिष्ट स्थान में ख्याति प्राप्त सेट्ठी के अर्थ में स्थान-विशेष के नाम पर अन्य नगरों में सेट्ठियों की पहचान होती है, यथा-वाराणसी का राजगृह सेट्ठी।[123] किसी सेट्ठी की अवस्थिति (सेट्ठी धनम)[124] उस पद द्वारा ही ज्ञापित होती थी। इस पद के लए-जैसा फिक ने कहा है- हमें यह उल्लेख नही मिलता है कि सेट्ठी का निर्वाचन व्यापारिक समुदाय के सदस्यों द्वारा ही होता है।[125] सम्पत्ति का लेखा रखने के लिए राजा द्वारा एक राज्याधिकारी नियुक्त हो जाता था तो वह जीवन पर्यन्त अपने उस पद पर रहता था, और उसे मरणोपरांत उसके पुत्र अथवा उसके उत्तराधिकारी को वह पद मिलता था।[126] लेकिन जब वंशगत व्यापार टूट जाता था तो सेट्ठी का पद नगर के किसी दूसरे परिवार के पास चला जाता था[137]। फिर भी ऐसी दशा में सम्भवतः राजा की अनुमति आवश्यक थी। अतएव सेट्ठी लोग अपने लड़कों को अपना व्यापार-व्यवसाय विशेष ध्यान देकर सिखाते थे। एक जातक में विख्यात व्यापारी के पुत्र के बारे में उल्लेख मिलता है जिसने अपने पिता का व्यवसाय अपनाया और उसके पिता ने उसे व्यवसाय के गुप्त भेदों और नैतिकताओं को सिखाया था[128]।

साधारणतया सेट्ठियों का चुनाव स्थानीय व्यापारियों के बीच होता था, पर विशेष परिस्थितियों में सेट्ठी के पद पर बाहरी व्यापारी की भी नियुक्ति की जाती थी। उसका प्रमाण हमें अगुत्तरनिकाय में मिलता है, जहां कोसल के प्रसेनजित मगध के राजा बिम्बिसार से प्रार्थना करते है कि उन्हें वे अपने यहाँ से एक सेट्ठी भेज दें, जिसकी नियुक्ति वे साकेत नगर के सेट्ठी के रूप में करेंगे। तत्हेतु बिम्बसार ने अंग के भड़्डयन के धनन्जय को कोसल नरेश के पास भेजा था।[129]

दुर्भाग्यवश! हमें सेट्ठियों के कार्यो के बारें में बहुत कम जानकारी मिलती है। फिर भी, यह प्राय: निश्चित है कि सेट्ठी के पास एक कार्यालय (थान)[130] होता था। जहाँ पर वह व्यवसाय को दोहरे रूप में राज्याधिकारी के रूप में और व्यक्तिगत व्यापारी के रूप में संचालित करता था। राज्याधिकारी[131] के रूप में वह राजा से दिन में तीन बार मिलता था।[132] राजा की आज्ञा से रियायती कीमत आदि पर वस्तुओं की खरीद का कार्य करता था। व्यापारी के रूप में वह शहर में खरीद-फरोख्त करता था, विभिन्न वस्तु[133] के बेचने वाले व्यपारियों से बातचीत करता था और बड़ी मात्रा में भू-सम्पत्ति,[134] स्वर्ण ओर सिक्कों[135] के रूप में अधिक भौतिक सम्पत्ति[136] एवं बहुत अधिक मात्रा में अन्न भण्डार अपने पास रखता था। स्थानीय व्यापार और उद्योग को तो वह वित्त प्रदान करता ही था।[137]

बुद्ध-काल में व्यापारिक साझा संगठन (संभूय समुत्थान व्यवहार) के विषय में भी जानकारी मिलती है। पी०वी० काणे का विचार है कि प्राचीन सूत्रों के समय में व्यावसायिक साझेदारी ने महत्व नहीं प्राप्त किया था।[138] याज्ञवल्क्य के समय सम्मिलित व्यावसायिक साझेदारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था तथा इसके लिए 'सम्भूय-समुत्थान' शब्द मिलता है।[139] जातक-कथाओं में साझेदारी को 'द्वैज जन: पट्टिका हुत्वा'[140] के

रूप में व्याख्यायित किया गया है। व्यावसायिक साझेदारी में लाभ साझेदारों के बीच शेयरहोल्डर की तरह बँटता था तथा साझेदारों के बीच (बिक्री करने वाले एवं पूंजी लगाने वाले) में आपसी समझौता रहता था तथा उन्हें वैधानिक समानता प्राप्त थी। जातक कथाओं में साझेदारी के कई उदाहरण मिलते है। उत्तर दिशा के घोड़ा बेचने वाले व्यापारी वाराणसी से घोड़े का आयात करते थे।[141] श्रावस्ती के व्यापारी पांच सौ बैलगाड़ियों में व्यापारिक वस्तुएँ लादकर वाराणसी लाये।[142] वाराणसी के व्यापारी इतनी ही संख्या में बैलगाड़ियों में माल लादकर देश के विभिन्न जनपदों में जाकर व्यापार करते थे,[143] और वाराणसी के व्यापारी उज्जैन के ऐसे व्यापारियों से व्यवसाय करते थे,[144] जो बेबीलोन में चिड़ियों का निर्यात करते थे। जल-यातायात में सम्मिलित रूप से किराया देना प्राचीन भारत के सझीदारो की एक विशिष्ट स्थिति थी। सम्मिलित खरीददारी के लिए भी साझेदारी होती थी। प्राचीन कानून बनाने वालों ने भी साझेदारी का नियम बनाया था। ऐसे कानून पूर्णतः मानवीय थे, और उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों के हितों की रक्षा करते थे। ये नियम समानता के आधार पर और विधि-सम्मत रूप से साझेदारों के बीच में समझदारी पैदा करते थे। पर इसके विपरीत बेईमानी के लिए की गई साझेदारी दण्डनीय थी। अतः मौर्यकाल तक आते-आते नये-नये रास्ते बने। लगभग सारे नगर आवागमन के मार्ग पर अवस्थित थे जो शहर के रूप में विकसित हुए।

लगभग तीसरी शताब्दी ई.पू. मे मौर्य सम्राज्य की छत्रछाया में व्यापार का प्रसार हो रहा था इस काल में भारत ने इतनी प्रगति कर ली थी कि उसका न केवल देश के आन्तरिक भागों से अपितु एशिया के सुदूर देशों से भी घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। इस युग में अंतर्देशी व्यापार सार्थवाहों के

सहयोग से काफी विकसित था। कपडा-उद्योग तत्कालीन व्यापार में महत्वपूर्ण था, शायद इसी कारणवश अर्थशास्त्र में उन स्थानों का बार-बार उल्लेख आता है, जो विशेष प्रकार के कपड़े बनाने के लिए प्रसिद्ध थे। सूती कपड़ा 'मदुरा-अपरांत' से और बुना हुआ सूती-कपड़ा 'भड़ौच' (भरूकच्छ) से पश्चिम को निर्यात किया जाता था।[145] कपड़े की कई और किस्मों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में आता है, इनमें एक सफेद मुलायम 'दुकूल' नाम का कपड़ा और क्षौम था। मौर्य-युग में रत्नों के प्रति लोगों का बहुत आकर्षण था, इसलिए इस युग में रत्नों का व्यापार खूब चलता था। बहुत से रत्न भारत के कोने-कोने से आते थे।[146] बड-बड़े शहरों में विलासिता की वस्तुओं की मांग अधिक थी। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में मौर्य-युग के व्यापार और व्यापारिक वस्तुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कृषि से सम्बन्धित वस्तुओं में जौ, गेहूँ, चावल, गन्ना, चीनी, कपास, काली-मिर्च, चन्दन, इत्र, तिल, तेल आदि प्रमुख थी। जानवरों से प्राप्त व्यापारिक वस्तुओं में हाथी, घोड़ा, बकरी, भेड़, जानवर की खाल, मांस, हाथी-दांत, शहद, रेशमी कपड़ा, कम्बल आदि की काफी मांग थी। यद्यपि मिट्टी के बर्तनों के व्यापार के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र में वर्णन नहीं मिलता है, पर यह उद्योग काफी विकसित था। शायद इसका कारण यह रहा हो कि इस युग में इस उद्योग को काफी सामान्य दृष्टि से देखा जाता रहा होगा।[147]

मौर्य-युग में खनिज पदार्थ जैसे-तांबा, लोहा, सीसा, टिन, सोना और हीरे का व्यापार खूब चलता था। अन्य ऐसी वस्तुएँ, जिनका इस युग में व्यापार अच्छा चलता था, वे हैं- अगरू,[148] बांस,[149] भूर्ज पत्तियाँ,[150] कालीन, कवच,[151] पका चावल,[152] वस्त्र, जाली, सूती वस्त्र,[153] दारक,[154] अवरक, हिंगुल,[155] कटुका, कोद्रव,[156] लम्बी मिर्च, अलसी, भाष, मसूर, प्रिपंगु, मुदग, सरसों, शलि, चावल,[157] शैवया, रस्सी,

तेल-पणिका (इत्र का नाम),[158] साल की लकड़ी, धागा, उक्षीरा[159] खनिज बस्तुएँ-हरिताल, लाल हरिताल,[160] कसौटी (पत्थर)।[161]

राज्य द्वारा विदेशी व्यापार को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त था जिससे इस युग में देशी व्यापार के साथ विदेशी व्यापार का भी अधिकाधिक प्रसार हुआ था। इस समय राज्य ही सबसे बड़ा व्यापारी था।[162] प्राचीन भारत में बर्मा, सुवर्ण द्वीप, चीन आदि देशों से विभिन्न वस्तुओं का आयात-निर्यात भारी मात्रा में किया जाता था। चतुर्थ शताब्दी ई.पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य और सेल्यूकस के बीच मैत्री से भारत का पश्चिमी एशिया से व्यापार बहुत बढ़ गया था। भारत और सीरिया के बीच व्यापार, जो पहले से था, अब कहीं अधिक हो गया। पर्थिया से चीन और मध्यएशिया के बीच व्यापार होता था। पार्थियन व्यापार से एक ओर चीन और भारत का व्यापार बढ़ा, तो दूसरी ओर रोम-साम्राज्य का। वास्तव में, पार्थिया विचौलिया था, क्योंकि वह भारतीय वस्तुएं अपने यहां एकत्र करके आर्मेनिया और दूसरे देशों को बेचता था। मौर्य-युग में बल्ख के साथ 'पाटलिपुत्र' का व्यापारिक सम्बन्ध था। समुद्र के किनारों के रास्तों से भी भारतीय बन्दरगाहों में काफी व्यापार चलता था। पूर्वी समुद्र तट पर ताम्रलिप्ति और पश्चिमी समुद्र तट पर 'भरूकच्छ' के बन्दरगाहों से बेबीलोन का व्यापारिक सम्बन्ध था।

वस्तुतः मौय-युग में विदेशी-व्यापार को बहुत प्रोत्साहन दिया जाता था। यद्यपि आयात-निर्यात के समय, जैसे-फल-फूल और सूखे गोश्त पर मूल्य का छठा भाग; क्षौम, हरताल, मेनसिल, सिन्दूर, धातुएं, वर्ण धातुएं, चन्दन, अगरू, कटुक, खमीर, आवरण, शराब, हाथी-दांत खालें, सूती ओर रेशेदार कपड़े, आस्तरण, पर्दे, भेड़ और बकरे के ऊन पर उनके मूल्य का 1 1/10 से 1 1/15 भाग; चौपायों, कपास,

गधद्रव्य, दवाओं, काठ, बास, वल्कल, चमडा, मृद्भाण्डों, अनाज, तेल, नमक, क्षार, भुजिया चावल, पर उनके मूल्य का 20 से 25 वाँ भाग तथा शंख, हीरा, मोती, मूँग, रत्न तथा हार पर विशेषज्ञ की राय के आधार पर शुल्क देना पड़ता था, पर पण्याध्यक्ष विदेशी माल मंगवाने वालों और विदेशी माल लाने वालों को शुल्क में काफी रियायत देता था। इसी प्रकार अगर विदेशों में देशी माल बिकने पर फायदे की कम सम्भावना होती थी, तो पण्याध्यक्ष व्यापारियों के साथ रियायतें बरतकर व्यापार को प्रोत्साहित करता था।[163]

इस युग के विदेशी-व्यापार में घोड़े, हाथी, खाल, समूर, गंधद्रव्य, कपड़े, रत्न इत्यादि मुख्य वस्तुएँ थी। चमड़े और समूर अधिकतर उत्तर-पश्चिम भारत, पूर्वी अफगानिस्तान और मध्य एशिया से आते थे। साथ ही रोह (काबुल के पास), बल्ख और चीन से मुख्य रूप से चमड़े और समूर तथा रेशमी कपड़े यहाँ आते थे। कौटलीय अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्य-युग में रत्नों का व्यापार खूब चलता था। कुल और चूर्ण मुरूचिपत्तन के पास तथा बाराबर के समुद्र तट से आते थे, मोती मनार की खाड़ी, फारस की खाड़ी और सोमाली देश के समुद्र तट से आती थी। मुरूचि का प्राचीन बन्दरगाह भी मोती के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। सिंहल से कीमती रत्न आता था। प्राचीन काल में ईरानी रत्न, मुला दर्रे से होकर भारत आते थे। माणिक्य और लाल अफगानिस्तान से तथा बर्मा से आते थे। अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मौर्य-युग में गंध-द्रव्य की काफी मांग थी, चन्दन की अनेक किस्में जावा, सुमात्रा और मलयद्वीप से आती थी मलयद्वीप और जावा से ही अगरू की लकड़ी आती थी।

मौर्य-युग में व्यापारिक क्रियाकलापों पर राज्य का कठोर नियंत्रण था, संभवतः इसका कारण राज्य द्वारा स्वयं व्यापार में लिप्त होना था। लेकिन राज्य केवल ऐसे उद्योगों को अपने नियंत्रण में रखता था, जो उद्योग अधिक लाभप्रद थे, जिन उद्योगों के वस्तुओं की विदेशी बाजार में अधिक मांग थी और जो उद्योग राज्य के लिए निश्चित रूप से लाभप्रद थें। कश्मीर की केसर, पूर्व का उत्तम कपड़ा, पश्चिम का घोड़ा आदि का व्यापार राज्य के एकाधिकार में था। राजकीय क्षेत्र में राज्य के उपयोग करने एव व्यापार करने दोनों के लिए वस्त्र-उद्योग चलाया जाता था। इसके अतिरिक्त मदिरा बनाने तथा उसका व्यापार करने में, नमक बनाने और खानों के उपयोग में राज्य का एकाधिकार था। इस युग में वैयक्तिक और राजकीय व्यापार में स्पर्धा रहती थी। इस काल में वैयक्तिक व्यापार और राज्य द्वारा व्यापार के लिए विभिन्न नियम थे। माल रोकना और जमाखोरी निजी व्यापारियों के लिए अपराध थे, परन्तु राज्य-द्वारा व्यापार में यह सब क्षम्य था।[164]

इस काल में व्यापारिक मार्गो को संख्या में काफी वृद्धि हुई। प्रशासनिक और सैनिक आवश्यकता के कारण यातायात-मार्गो में वृद्धि हुई तथा मार्गो की सुरक्षा भी बढ़ी। कृषि तथा उद्योग के लिए वस्तुएं देश के विभिन्न मार्गो से एक-स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंचने लगी। उत्तर-पश्चिमी भाग यूनानियों के अधिकार से मौर्यो के अधिकार में आ गया। दक्षिण की विजय से दक्षिण और पश्चिम व्यापार-मार्ग पर मौर्यो का नियंत्रण हो गया। डा0 रोमिला थापर के अनुसार अशोक द्वारा कलिंग की विजय का एक कारण व्यापार की दृष्टि से कलिंग का महत्व थां।[165] महानदी और गोदावरी के बीच स्थित होने के कारण बंगाल और दक्षिण का व्यापार सुरक्षित नही था। मेगस्थनीज के विवरण से स्पष्ट है कि मार्ग-निर्माण का एक

विशेष अधिकारी था जो 'एग्रोनोमोई' कहलाता था।[166] ये सड़कों की देख-रेख करते थे। इस समय के राजमार्गो में उत्तर-पश्चिम (तक्षशिला) से पाटलिपुत्र तक का राजपथ सबसे महत्वपूर्ण था। इसे 'उत्तरापथ' के नाम से जाना जाता था। इस मार्ग की भारत के राजनैतिक और आर्थिक जीवन में प्रमुख भूमिका रही है। समुद्री-व्यापार के विकास के पहले यह पश्चिम से व्यापार के लिए प्रमुख स्थल-मार्ग था, और 'तक्षशिला' विनिमय का केन्द्र था। अतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए भी इस मार्ग का प्रयोग किया जाता था। क्योंकि गंगा के क्षेत्र व उत्तर-पश्चिम में माल का काफी विनिमय होता था।[167] इसी मार्ग पर प्रमुख 'व्यापारिक नगर' स्थित थे। मेगस्थनीज ने इस पथ के बारे में अपने विवरण में लिखा है। मौर्य-शासन में यह वणिक पथ था। मेगास्थनीज ने इस पथ को आठ स्तरों में बताया है तथा उनकी विस्तृत जानकारी दी है। मेगास्थनीज द्वारा दिया गया विवरण निम्नलिखित है।[168] मेगस्थनीज ने दूरी स्टेडिया में दी है, जिसकी मील में दूरी निम्नलिखित है-

(1) पुष्पकलावती से तक्षशिला तक — 60 मील

(2) पुष्पकलावती से झेलम तक — 120 मील

(3) पुष्पकलावती से व्यास तक — 390 मील

(4) व्यास से सतलज तक — 168 मील

(5) सतलज से यमुना तक — 168 मील

(6) यमुना से गंगा तक — 112 मील

(7) गंगा से रोडोफ तक — 119 मील

(8) रोडोफ से कान्यक्ब्ज तक 167½मील

यूनानियों ने इस बड़े मार्ग को राजपथ कहा है। इस पथ की मार्ग-सूची का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह पुष्पकलावती से उद्माण्ड होकर तक्षशिला पहुचता था। उद्माण्ड नगर की पहचान आधुनिक ओहिन्द से की जा सकती है।[169] चूंकि यह नगर सिन्धु नदी के दाहिने किनारे पर था अतः यह इमबोलिम का पुरातन नगर हो सकता है जहा से सिकन्दर ने तक्षशिला जाने के लिए सिन्धु नदी पार की थी।[170] अति प्राचीन काल से उद्माण्ड वस्तुओं को सिन्धु के पार जाने के लिए दूसरे जहाजों पर माल लादने का सुविधाजनक स्थान था।[171] तक्षशिला के आगे यह मार्ग झेलम, व्यास और सतलज को पार करके यमुना पहुंचता था। यहां से यह मार्ग संभवतः हस्तिनापुर से होकर गंगा की ओर बढ़ता हुआ रोडोफ पहुंचता था। रोडीफ की पहचान वी0एस0 अग्रवाल ने रामगंगा से की है।[172] यहां से मार्ग कुछ दक्षिण की ओर मुड़ता हुआ कान्यक्ब्ज आता था और वहां से प्रयाग होता हुआ पाटलिपुत्र और फिर ताम्रलिप्ति पहुंच जाता था।[173] मुख्य मार्ग के अतिरिक्त इस मार्ग में कई स्थानों पर छोटे रास्ते आ मिलते थे। स्थल मार्ग से उत्तरापथ में ईरान तथा यूनान तक व्यापारिक सम्बन्ध था।

उत्तरापथ के अतिरिक्त प्राचीन भारत का एक अन्य पंथ था जो 'दक्षिणापथ' के नाम से जाना जाता था। सतपुड़ा की पहाड़ियां और विन्ध्य-पर्वत श्रेणी उत्तर भारत को दक्षिण से अलग करती है।[174] विन्ध्य-पर्वत अपने उन पथों के लिए प्रसिद्ध है जो उत्तर भारत को पश्चिमी किनारे के बन्दरगाहों और दक्षिण के प्रसिद्ध नगरों से जोड़ते है।[175] दक्षिण भारत के मार्गो के बारे में पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्यों की अल्पता के कारण उनके विकास के बारे में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

वैदिक आर्य दक्षिण भारत से परिचित थे।[176] यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों और पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी दक्षिण भारत के जनपदों का उल्लेख प्राप्त होता है पर उत्तर-दक्षिण भारत के बीच मार्गो का विकास छठी शताब्दी ई.पू. के अन्तिम चरण से हुआ होगा। रामायण[178] के अनुसार वनवास के लिये राम उत्तर से दक्षिण भारत की ओर गये। वे चित्रकूट से दण्डकवन होकर नर्मदा को पार कर पंचवटी के जंगल पहुंचे। फिर वे गोदावरी के तट पर पंचवटी पहुंचे। महाभारत के वनपर्व में वर्णित तीन मार्गो की ओर वी0एस0 अग्रवाल ने ध्यान आकर्षित किया है। तीन मार्गो में-दक्षिण कोशल की ओर विदर्भ और इन दोनों के बीच से दक्षिणापथ था।[179] महाभारत से ज्ञात होता है कि ऋक्षवान[180] पर्वत को पार करके एक मार्ग अवंति की ओर जाता था।[181] यहां से यह मार्ग महिष्मती को जाता था। जहां बहुत से व्यापारिक मार्ग मिलते थे। इसके अतिरिक्त दो अन्य मार्ग थे-एक विदर्भ जनपद की ओर दूसरा कोशल को जाता था। ये मार्ग आगे जिस मार्ग पर मिलत थे, उसे हम दक्षिणापथ कह सकते हैं।

कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र[182] में दक्षिणापथ के बारे में कहा है। दक्षिणी-मार्ग बहुत सी खानों से होकर जाता था। जो मुश्किल यात्रा नहीं था। इस पथ से बहुमूल्य बस्तुएं जैसे- सीप, हीरा, मोती और सोना आता था। इसके अतिरिक्त एक प्रमुख मार्ग था जो दक्षिण-पश्चिम को 'श्रवस्ती' से 'पैठन' जाता था। कौटिल्य ने हिमालय की ओर जाने वाले मार्ग की तुलना में दक्षिणापथ को अधिक लाभदायक बताया है। क्योंकि इस मार्ग से बहुत वस्तुएं आती थी।

उपरोक्त स्थल-मार्गो के साथ-साथ मौर्य-युग में जल-मार्ग भी विकसित अवस्था में था, तथा व्यापार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। जल-मार्ग के सन्दर्भ में कौटिल्य[183] स्वंय परस्पर विरोधीमत देते हैं। एक ओर वे कहते है कि जल-मार्ग को

वरीयता देनी चाहिए क्योंकि यह कम खर्चीला एवं इसमें कम श्रम की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर वे कहते है कि संकट में जल-मार्ग हमें मदद नहीं देता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मौसम में इसका उपयोग नही हो सकता क्योंकि यह अधिक खतरनाक है। कौटिल्य जल-मार्गो को दो भागों में रखते है- एकतटों से, दूसरा मध्य महासागर से। इसके अतिरिक्त तीसरा मार्ग नदियों के द्वारा है। तीसरा मार्ग कम खतरनाक है।[184] देश का आंतरिक व्यापार नदियों के द्वारा काफी मात्रा में होता था। समुद्री-मार्ग से मौर्ययुगीन भारत का व्यापार पूरे दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से होता था। राज्य की ओर से नौकाध्यक्ष जलमार्गो तथा तत्सम्बन्धी व्यापार की व्यवस्था करता था।[185] राज्य की ओर से व्यापार में सुविधा के लिए अत्यन्त सुरक्षित स्थल तथा जलमार्गो का विकास किया गया था। समुद्र तथा महानदियों के व्यापारिक मार्गो का विकास किया गया था। जिससे समुद्र तथा महानदियों के व्यापारिक मार्गो पर व्यापारिक नगरों कां विकास हुआ।

ईसा से पहले की और बाद की दो शताब्दियों में भारत के विदेशी समुद्री व्यापार का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ। उद्योग-धन्धों की उन्नति के कारण इस समय देश के आंतरिक एवं विदेशी व्यापार को भी बड़ा प्रोत्साहन मिला। विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धें और व्यवसाय करने वाले शिल्पियों की श्रेणियाँ विद्यमान थी और उनका संगठन पहले की अपेक्षा अधिक दुष्ट एवं परिपक्व हुआ। अधीतकाल में भारत का विदेशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। भारत का जल और स्थल मार्गो से द्वीप तटों के साथ अच्छे व्यापारिक सम्पर्क थे जिनके फलस्वरूप व्यापारिक केन्द्रों के रूप में वहाँ अनेक नगरों का विकास हुआ। हाथी-दांत, स्र्वण, रजत आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का व्यापार होता था। इस युग में उज्जयिनी तथा तक्षशिला व्यापार

का प्रमुख केन्द्र था।[186] चीन से रेशमी वस्त्रों का भारत में आयात होता था।[181] भारत का रोम, चीन, बाली, जावा, सुमात्रा और श्रीलंका से विशेष व्यापारिक सम्बन्ध था। इस युग में यूनान तथा ईरान से उनके प्रतिनिधि व्यापारिक प्रयोजन के लिए भारत में आने लगे थे।

सातवाहन-युग आर्थिक सम्पन्नता की दृष्टि से अद्वितीय था। इस कारण इस युग में व्यापार बहुत बढ़ा हुआ था। इस युग में सुदूर-पूर्व की ओर विदेशी व्यापार में अपार वृद्धि हुई।[188] इस काल में दक्षिण-पश्चिम में अनेक व्यापारिक नगर थे, यथा-प्रतिष्ठान, तगर, जुन्नार, नासिक, गोवर्धन, और वैजयंती।[189] ये अंतर्देशीय व्यापार करने वाले शहर आपस में एक दूसरे से तथा महत्वपूर्ण बन्दरगाह एवं सड़कों से भी आपस में जुड़े थे। पेरिप्लस में यह उल्लेख है कि व्यापारी काफिलों में चलते थे और इनके लिए उस युग में यातायात का मुख्य साधन बैलगाड़ी था। साथ ही, इनके लिए नदी भी यातायात का प्रमुख साधन थी। सातवाहन-वंश के शासक यज्ञश्री सातकर्णी के जहाज अंकित सिक्के इस बात के घोतक है कि इस युग में समुद्री-व्यापार उत्कर्ष पर था।[190] इस काल में रोम के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। विनुकोण्डा, नेलोर आदि स्थानों से पाये गए रोमन-सिक्कों से भारत के रोम के साथ व्यापारिक सम्बन्ध पुष्ट होते है।[191]

पेरिप्लस में वर्णन है कि सुप्पारक, बेरीगाजा और कल्याण इस समय के प्रमुख बन्दरगाह थे।[192] यहां पर इटली से शराब तथा अरब से तांबा, टिन, सीसा, मूंगा, फिरोजा, चकमक, शीशा, अंजन, कपड़ा, सोना, चांदी और अलंकारिक आभूषण आयात होता था।[193] इसके निर्यातों में प्रमुख-हाथी-दांत, गोमेद, बड़ी पीपल, रेशमी कपड़े, कालीमिर्च, मोती, हीरे, नीलम तथा विभन्न प्रकार के पारदर्शी रत्न आदि।

पश्चिमी तट पर व्यावसायिक दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न केन्द्र कल्याण था। इसीलिए इस पर आधिपत्य के लिए शक और सातवाहनों में संघर्ष हुआ था। सातवाहन-युग में विदेशी लोगों में भारतीय वस्तुओं के प्रति बहुत आकर्षण था। इसी से इस युग में विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा हुआ था। प्लिनी का कहना है कि रोम के बाजारों में भारतीय वस्तुएँ सौगुना अधिक कीमतों पर बिका करती थी। इसलिए दक्षिण-भारत में रोम से बड़ी मात्रा में सोना आता था। साथ ही, दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में बड़ी मात्रा में प्राप्त रोमन सिक्के इस बात के प्रमाण है कि[194] स्थानीय व्यापारियों को इस व्यापार से अत्यधिक लाभ हुआ था।

इस काल में चीन और पूर्वी देशों में भी भारतीय व्यापार का प्रसार हुआ, जहाँ भारतीय व्यापारी विभिन्न प्रकार के सामनों को बेचा करते थे। बैक्ट्रिया में रहने वाले चीनी राजदूत् ने वहां के बाजार में चीन के बांस और वस्त्र बिकते देखे थे, और पूछने पर उसे पता लगा कि ये वस्तुएं भारतीय व्यापारियों द्वारा अफगानिस्तान के मार्ग से वहां पहुंची थी।[195] चीन से प्राचीन काल से ही भारत का राजनीतिक और व्यापारिक सम्पर्क था। ई.पू. दूसरी सदी की एक चीनी मुद्रा मैसूर से मिली है, जो भारत और चीन के निकट सम्बन्ध को व्यक्त करती है। इस काल में चीन के अतिरिक्त बर्मा, सुवर्णभूमि आदि देशों में भी भारतीय व्यापारी जाते थे और अपनी व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार करते थे। मिलिन्दपन्हों से विदित होताा है कि भारतीय व्यापारी सुवर्ण भूमि में जाते थे और विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे। तत्कालीन साहित्य में अनेक प्रकार के व्यापारियों के भी-वर्णन मिलते है उस समय के व्यापारियों के दो बड़े वर्ग उल्लेखनीय है। पहले वर्ग के व्यापारी 'वणिक' कहलाते थे। पतंजलि के अनुसार वणिक् का तराजू के साथ गहरा

सम्बन्ध था। उन दिनों ब्राह्मण लोग वणिक व्यवसाय में कम प्रवृत्त होते थे। पतंजलि ने कहा है कि उड़द के समान काले रंग वाले आदमी को दुकान में बैठा देखकर कोई यह नही समझेगा कि वह ब्राह्मण है।[196] वणिक लोग नाना प्रकार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय से अपनी जीविका का निर्वाह करते थे। उस समय विशेषीकरण की प्रवृत्ति प्रबल थी। विशिष्ट वस्तुओं का व्यापार करने के आधार पर इन व्यापारियों के नाम पड़ जाते थे, जैसे-घोड़ों का व्यापारी, 'अश्ववाणिज', गाँवों का व्यापारी 'गोवाणिज', बांस का व्यापारी 'वंशकाठेनिक',। ये व्यापारी मद्र, कश्मीर आदि दूरवर्ती प्रदेशों से अपना माल मंगाने के कारण मद्रवाणिज, कश्मीरवाणिज,[197] कहलाते थे। खनिज-द्रव्यों और पत्थरों का व्यापार करने वाला व्यवसायी प्रस्तारिक[198] कहलाता था।

व्यापारियों का दूसरा प्रधान वर्ग 'सार्थ' कहलाता था। उन दिनों एक स्थान से दूसरे स्थान तक व्यापारिक माल ले जाने में चोर-डाकुओं तथा जंगली जानवरों के कई प्रकार के खतरे होते थे, अतः व्यापारी अकेले यात्रा करना निरापद नहीं समझते थे। वे अपनी सुरक्षा के लिए बड़े-बड़े समूहों या काफिलों में यात्रा किया करते थे। इन समूहा को उस समय सार्थ कहा जाता था। सार्थ बनाकर चलने वाले व्यापारी सार्थिक या 'सार्थवाह' कहलाते थे। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी[199] ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो पूंजी द्वारा व्यापार करने वाले यात्रियों का अगुवा हो वह सार्थवाह है। वस्तुतः सार्थ का अभिप्राय है समान अर्थ या पूंजी लगाकर चलने वाले व्यापारी। सार्थो के सचल संघटन का नेतृत्व उनके एक नेता द्वारा होता था, जो सार्थवाह कहलाता था। सार्थ का नेता उत्तम माग-प्रदर्शक होता था और उसके सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि उसे जंगलों के विभिन्न रास्तों का, पूरा ज्ञाता, मेघावी और निपुण व्यक्ति होना चाहिए।[200] इन दिनों व्यापारी लोग सार्थो में

देश के एक ओर से दूसरे छोर तक लम्बी यात्राएं किया करते थे। अवदान शतक[201] में कहा गया है कि ये व्यापारी उत्तर से दक्षिण तक जाया करते थे। डा0 मोतीचन्द[202] ने लिखा है कि सार्थवाह महोदधि (बंगाल की खाड़ी के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से लेकर सीरिया की अंताखी नगरी तक, यवद्वीप और कटाह द्वीप (जावा और केड़ा) से चोलमण्डलम् के सामुद्रिक पतनों तक और पश्चिम में यवन एवं बर्बर देशो तक के विशाल जल-थल पर छा गये थे। 'अभिज्ञान-शकुन्तलम' में भी सार्थवाहों का उल्लेख समुद्र यात्रा के सन्दर्भ में आया है।[203]

इनके अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार के व्यापारी भी थे जो समुद्री व्यापार किया करते थे। इनका परिचय हमें बौद्ध एवं जैन साहित्य में वर्णित कोटिकर्ण, पूर्ण, ज्ञाताधर्म, सानुदास आदि व्यापारियों की कथाओं से होता है। सानुदास की कथा सुवर्ण द्वीप और मध्य एशिया के विभिन्न व्यापारिक स्थानों का वर्णन करती है। जैन-ग्रन्थ 'आवश्यकचूर्णि' से यह ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत के मदुरा नामक बन्दरगाह से सुराष्ट्र (काठियावाड़) तक जहाज चलाकरते थे। ज्ञाता धर्म की एक कथा में भारतीय व्यापारियों द्वारा सुवणंद्वीप और कालियद्वीप (संभवतः जंजीवार) की यात्राओं का वर्णन मिलता है। जैन साहित्य में समुद्री-यात्रा की विभिन्न परिभाषाओं और विभिन्न प्रकार के बन्दरगाहों का वर्णन भी मिलता है। वृहत्कल्प सुत्र भाष्य के अनुसार 'जलपत्तन' ऐसे समुद्री बन्दरगाह होते थे, जहां विदेशी माल उतारा जाता था और देशी माल का चालान होता था। 'स्थलपट्टन' ऐसे स्थानों को कहते थे जहां बैलगाड़ियों से माल उतारा जाता था। 'द्रोणमुख' (द्रोणीमुख) ऐसे स्थान थे यहां जल और थल दोनों से माल आता था, जैसे- 'ताम्रलिप्ति' ओर 'भरूकच्छ'। 'निगम' 'व्यापारियों की ऐसी बस्ती को कहते थे, जहां लेन-देन और ब्याज-बट्टे का काम होता था। सार्थो की

बस्ती और पड़ावों को 'निवेश' कहा जाता था। जिन स्थानों में बड़ी मात्रा में थोक माल बड़ी-बड़ी गांठों में आता था, उन स्थानों को 'पुटभेदन' कहा जाता था। शाकल का सुप्रसिद्ध नगर इसी प्रकार का पुटभेदन था। महावस्तु के अनुसार जिस स्थान से सुवर्णद्वीप आदि जाने वाले जहाज गहरे समुद्रों में प्रविष्ट होते थे, उसे 'समुद्रपत्तन' कहते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सुगठित व्यापारिक व्यवस्था तथा गतिपूर्ण व्यापार ने भारत को वैदेशिक सम्बन्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा। व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था, जिससे आर्थिक समृद्धि का प्रसार हुआ फलस्वरूप नगरीकरण को गति मिली।

लगभग प्रथम शताब्दी तथा उसके बाद की दो शताब्दियों में नगरीय जीवन समृद्ध और विकसित हो गया था जिसकी पृष्ठभूमि में उत्पादन को नियोजित करने के कारण व्यापारियों एवं शिल्पकारों की श्रेणियाँ पहले की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण हो गयी थी। श्रेणियों की सुदृढ़ स्थिति का आभास इसी से लगाया जा सकता है कि जनता धर्मदाय के रूप में अपना धन उन्हें पूर्ण विश्वास के साथ सौप दिया करती थी। कुलरिक (सम्भवतः कुम्हार),[204] औदयंत्रिक, तैलिक, कोणाचिक,[205] बांस का तथा पीतल का काम करने वाले[206] और अनाज के व्यापारियों की श्रेणी में इस प्रकार के धर्मदाय जमा किए गये थे, इन व्यापारिक तथा औद्योगिक श्रेणियों के धर्मदाय विभिन्न प्रयोजनों से जमा किए जाते थे। जैसे बीमार भिक्षुओं के लिए दवा का प्रबन्ध करने, वृक्ष लगाने आदि। इस काल में श्रेणियाँ, पुरों एवं जनपदों का एक आवश्यक अंग बन चुकी थी और उनके नियमों का रक्षण करना राजा का कर्तव्य बताया गया है।[207] इनके साथ किए गये करार (संविद, समय) को तोड़ने वाला व्यक्ति राजा द्वारा

निष्कासित कर दिया जाय, इसकी व्यवस्था मनु ने की।[208] यज्ञवल्क्य स्मृति में भी कुछ इसी तरह के नियम मिलते है।[209] श्रेणी अथवा किसी अन्य प्रकार की सम्पत्ति का हरण करने वाला अथवा इनके साथ अनुबन्ध को तोड़ने वाला सम्पत्तिहीन करके देश से निकाल दिया जाय, यह नियम बनाया गया था। बृहस्पति ने भी इस प्रकार के इकरारनामों को श्रेणी के हितों की रक्षा के लिए तथा उनके धर्म के उचित रूप से पालन के लिए आवश्यक समझा।[210] इस प्रकार निर्धारित किए गये नियम इस ओर स्पष्ट संकेत करते है कि श्रेणी के हितों की संरक्षा के लिए राजा किस प्रकार सचेष्ट था।

इस काल में श्रेणियां अपने लिए स्वंय नियमों का निर्धारण करती थी। राजा को भी इसके लिए आगाह किया गया है कि वह जाति, जनपद तथा कुलधर्म के समान ही श्रेणी धर्म को भी भलीभांति समझकर स्वधर्म (राजकीय कानून) का प्रचलन करें।[211] श्रेणियों से राजा याथाशवित उनके अनुबन्ध का पालन करवाये इसका आग्रह भी बार-बार मिलता है।[212] अपने सदस्यों के मध्य हुए झगड़ों की निर्णायक वे स्वंय होती थी और राजा अधिकतर उनके निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होता था।[213] श्रेणियों के सदस्यों द्वारा श्रेणिहित के लिए अर्जित सम्पत्ति पर भी श्रेणी का अधिकार था।

कुषाण-काल में उन व्यापारियों की श्रेणियों का महत्व विशेष हो गया, जिनका नेता सार्थवाह होते थे। इसका कारण भारत से होकर चीन तथा रोम से होने वाले रेशम के व्यापार की वृद्धि थी।[214] भीटा से प्राप्त कुषाण-कालीन मुद्राएं निगम का उल्लेख करती हैं, जो उनकी महत्वपूर्ण स्थिति की घोतक है।[215] अपने विकसित

गतिविधियों के कारण श्रेणियां प्रथम शताब्दी ई0 के बाद की दो-तीन शताब्दियों से संघटित होकर जनजीवन का आवश्यक अंग मान ली गयी थी।

इस समय व्यापारिक समुदायों तथा राज्य के सक्रिय प्रयासों से व्यापारिक गतिविधियां बहुत बढ़ गई थीं। अंतर्देशीय व्यापार दूर-दूर तक होता था, जैसे-तक्षशिला और वाराणसी के बीच।[216] इस समय विदिशा बारीक हाथी दांत के उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। इसके पूर्व जातकों[217] में वाराणसी के हाथी दांत के उद्योग का उल्लेख आया है। दक्षिण भारत के बारवेरिकम और भरूकच्छ इस युग में आयात-निर्यात के प्रमुख बन्दरगाहों के केन्द्र थे।

कुषाणों के शासन-काल की प्रमुख विशेषता विदेशों से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होना है। इस समय भारत का मध्यएशिया, रोम, दक्षिण-पूर्व एशिया, चीन आदि के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भारत-रोमन व्यापार था। डब्लू0 एच0 शांक[218] ने और ई0 एच0 वार्मिंगटन[219] ने भारत और रोम के बीच व्यापारिक सम्बन्धों का विशद् विवेचन किया है। संगम-युग के तमिल-साहित्य में यवन-व्यापारियों के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। भारत और रोमन व्यापार अगस्टस के समय (29 ई0 पू0-14 ई0) में बढ़ा। आगस्टस का समयरोमन साम्राज्य का स्वर्णकाल माना जाता है। इस समय तक एशिया, अफ्रीका और यूरोप के विभिन्न प्रदेशों को जीतने से रोमन लोगों को अपार सम्पत्ति और अनन्त वैभव प्राप्त हुआ था। इसके परिणामस्वरूप रोमन-राजा, जमींदार और कुलीन व्यक्ति बड़े ठाट-बाट से रहने लगे, वैभव एवं विलासिता को प्रदर्शित करने वाले बहुमूल्य रत्नों, मणियों, सुगंधित द्रव्यों, मसालों तथा बढ़िया वस्त्रों का प्रयोग करने लगे। इसलिए रोम में चीन के रेशम, भारत के मलमल, पन्ना और मोतियों की तथा कालीमिर्च जैसे मसालों की

मांग बढ़ गयी। इस मांग को पूरा करने के लिए भारत के साथ रोम के व्यापार एवं वाणिज्य में विलक्षण वृद्धि हुई। इसके प्रमाण हमें पेरिप्लस, प्लिनी एवं स्तूपों के विवरण से मिलते हैं। पाण्डिचेरी ने निकट अरिकामेडु की खुदाई से ज्ञात हुआ है कि वहां रोमन लोगों का एक बड़ा व्यापारिक अड्डा था। पहली शताब्दी ई0 में भारत और रोम में व्यापार की वृद्धि इस बात से सूचित होती है कि पश्चिमी भारत में पहले पांच रोमन-सम्राटों की मुद्राएं अधिक संख्या में मिली हैं। नीरो(54-56 ई0) के समय में भारतीय वस्तुओं का व्यापार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। पहले पांच रोमन सम्राटों की 612 स्वर्ण एवं 1187 रजत मुद्राएं मिली हैं। इनमें अधिकांश मुद्राएं आगस्टस तथा टाईबेरियस (14-37 ई0) की है। इस समय रोम को भारत, चीन आदि पूर्वी देशों से रेशम, मलमल, मसाले, बहुमूल्य रत्न एवं मणियां आदि प्राप्त करने के लिए बड़ी धनराशि इन देशों को भेजनी पड़ती थी। 77 ई0 में प्लिनी ने इस स्थिति पर आंसू बहाते हुए रोमन स्त्रियों की श्रृंगारप्रियता की बड़ी कड़ी निन्दा की थी।

प्रारम्भ में भारत रोमन व्यापार मुख्यतः स्थलमार्गो द्वारा होता था, परन्तु प्रथम शताब्दी ई0 से व्यापार मुख्यतः जलमार्ग से होने लगा।[220] 45 ई0 के लगभग हिप्पालस नाम यूनानी नाविक ने हिन्दमहासागर में चलने वाली मानसून हवाओं का पता लगाया, जिससे भारत और मिस्र के बीच आने-जाने वाले जहाजों को एक वर्ष के स्थान पर केवल तीन मास का समय लगने लगा।[221] रोमन व्यापारी अब गर्मियों में मानसून आरम्भ होने पर जून-जुलाई के महीनों में भारत आने लगे और दिसम्बर में उत्तर-पूर्वी मानसून चलने पर स्वदेश वापिस लौटने लगे। हिप्पलस का आविष्कार इस युग की एक महान् क्रांतिकारी घटना थी। क्योंकि अब रोमन-जगत के साथ भारत का सीधा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। फलतः भारत में आने वाले यवन, रोमन,

समुद्री व्यापारियों की सख्या बढ़ने लगी। उन्होंने भारतीय व्यापार पर अरबों के एकाधिकार को समाप्त किया। दक्षिण-भारत में उनकी कई बस्तियाँ बसने लगीं।

इस समय भारतीय हाथी-दांत भरूकच्छ, मुजिरिस, नेलकिण्डा और दोसेरेन से जल और थल के मार्गो से रोम पहुंचता था।[222] जिसका उपयोग वहां सजावट के लिए मूर्ति एवं आभूषण बनाने के लिए होता था। मनार की खाड़ी से मोती रोम जाती थी।[223] पेरिप्लस के समय में रेशमी कपड़े सिन्धु के बन्दरगाह बारबेरिकम से रोम भेजे जाते थे। भारत से सूती कपड़ा व मलमल रोम को बहुत प्राचीनकाल से जाता था, जिससे भारतीय मलमल बहुत विख्यात था। पेरिप्लस के अनुसार सबसे अच्छी किस्म की मलमल का नाम मोनोचे था।[221] रोम को भारत के मालाबार बन्दरगाह मुजिरिस, नेलकिण्डा और टिण्डिस से कालीमिर्च, भरूकच्छ से बड़ी पीपल और गुग्गुल, बारबेरिकम से नील और दक्षिण भारत से सोंठ, इलायची और लौंग निर्यात होती थी।[225] दालचीनी का प्रयोग रोमवासी मसाले इत्यादि के लिए करते थे। तेजपात जिसे यूनानी में मालाबाथृम कहते थे, शायद चीन से स्थल मार्ग-द्वारा मालाबार आता था और फिर रोम को जाता था, जहां इसका उपयोग मसाले के रूप में होता था। सफेद डामर और हींग अरब बिचौलियों द्वारा रोम पहुंचती थी। भारत से नारियल का तेल, तिल का तेल, शक्कर, केले, झाडू, नींबू, चावल और गेहूं भी रोम जाता था। अरब बिचौलिय्रों के माध्यम से कपूर, काकुनी, जायफल, नारियल, इमली, बहेड़ा, देवदार, पान-सुपारी, शीतल चीनी इत्यादि का भी निर्यात होता था। भारत से रोम को दवा तथा इमारती काम के लिए तरह-तरह की लकड़ियां जाती थीं। पेरिप्लस के अनुसार, भरूकच्छ से रोम और ओमान को चन्दन, सागौन, काली लकड़ी तथा आबनूस जाते थे।[226] पूर्वी भारत, असम, चीन, और मलाका के 'अगर' की विदेशों में

बहुत खपत थी। प्लिनी ने भारत को रत्नधात्री कहा था।[227] रोमनों को भारत से अनेक रत्न भेजे जाते थे। इन रत्नों में हीरे का विशेष स्थान था। आगस्टस के समय में ओनिक्स और लार्डोनिक्स की काफी मांग थी।[228] इनसे प्याले, श्रृंगार के उपकरण और मूर्तियां बनती थीं। पूर्वी भाग से रोमन-सम्राज्य को कपड़े का निर्यात किया जाता था। भारत के पश्चिमी व्यापार में शराब का भी एक विशेष स्थान था। थोड़ी-सी नामालुम-किस्म की शराब बारबेरिकम बन्दरगाह को आती थी।[229] रोम के बने दीपक और मूर्तियां भारत आती थीं। ब्रह्मगिरि की खुदाई में कुछ ऐसी ही मूर्तियां मिली हैं। रोमन साम्राज्य से कुछ शीशे के बर्तन भी आते थे।[230] तक्षशिला की खुदाई से हमें विदेशों से भारत आने वाली वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।[231] पेपीरस का पौधा, लोबान, मीठी लौंग, शिलारस, शराब, दमिश्क के वस्त्र आदि भारत के पश्चिमी बन्दरगाह के रास्ते भारत आते थे।[232] शराब इटली से, मीठी लौंग यूनान और इटली से, लोहबान अरब और पूर्वी अफ्रीका से भारत आता था।

शक-सातवाहन-कृषाण युग में तांबा, टिन और सीसा जो ढालने के लिए प्रयुक्त होता था, भारत में रोम से आता था।[233] भरूकच्छ से रोम के सोने-चांदी के सिक्के काफी संख्या में मिले है। पेरिप्लस के अनुसार यह विदेशी सिक्के यहां स्थानीय मुद्रा से मुनाफे में बदले जाते थें।[234]

उत्तरी भारत में, विदेशों से आने वाली वस्तुएं अधिक नहीं प्राप्त होती है, जो वस्तुएं प्राप्त है- वे सोने-चांदी की प्लेट, कांच के बर्तन, शराब आदि है। ये भरूकच्छ के बन्दरगाह से आती थी। इस प्रकार हम देखते है कि भारत का रोम के साथ दृढ़ व्यापारिक सम्बन्ध था। भुगतान-संतुलन भारत के पक्ष में था। इस समय भारत में अधिक सोना आया, जिससे आर्थिक समृद्धि का प्रसार हुआ। लेकिन कालांतर

में जब अधिक संख्या में सोने के सिक्के रोम से भारत आने लगे तो रोम ने सोने के सिक्कों के बदले में मिलने वाली भारतीय वस्तुओं का व्यापार बन्द कर दिया, जिससे तीसरी शताब्दी ई0 में रोम-साम्राज्य का भारत से व्यापार कम हो गया।

रोम के साथ ही इस समय चीन से भी व्यापारिक सम्बन्ध था। तारिमघाटी में भारतीय सभ्यता का प्रभाव चीन-भारत सम्बन्ध को प्रमाणित करता है।[235] भारत-चीन व्यापार का सकेत महाकाव्यों में मिलता है।[236] चीन से भारत आने वाली प्रमुख वस्तुओं में रेशमी-वस्त्र, रेशम का सूत, कच्चा रेशम, बांस तथा इसका बना सामान और समूर आदि था। गंगा घाटी में यह सामान इतना अधिक आता था कि वहां इन वस्तुओं के व्यापार को चलाने के लिए संभवत: कैल्टिस नाम सोने के सिक्के प्रचलित किए गये थे।[237] संस्कृत साहित्य में रेशम को चीन से आने के कारण 'चीनांशुक' कहा जाता था।[238] वस्तुत: इस समय चीन का प्रधान निर्यातित वस्तु रेशम ही था। मध्यएशिया के स्थलीय मार्ग से इसका निर्यात होता था। रेशम के अतिरिक्त इस समय चीन से जानवरों की रोयेंदार खालें भी विदेशों को भेजी जाती थी। ये बल्ख और अफगानिस्तान के मार्ग से भारत आती थीं और यहां से बारबेरिकम के बन्दरगाह से पश्चिमी जगत को भेजी जाती थी। रेशम भी इसी मार्ग से भारत पहुंचता था और बेरिगाजा से रोम भेजा जाता था। भारत के बन्दरगाहों से चीनी माल के विदेश भेजे जाने का कारण सम्भवत: ईरान के पार्थियन एवं रोमन-सम्राज्यों का उग्र संघर्ष था। व्यापारी इससे बचने के लिए अपना माल बल्ख से सीधा दक्षिण की ओर भारतीय बन्दरगाहों को भेज देते थे।

इस समय दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भी घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। भारत और दक्षिण चीन के मध्य मार्ग में, दक्षिण-पूर्व एशिया के नगर खनिज और

कृषि-पदार्थो से भरपूर थे। इन्ही प्राकृतिक सम्पदाओं के कारण इसे प्राचीन काल में 'स्वर्णभूमि' कहते थे।[239] भारतीय साहित्य में प्राप्त सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप के अंतर्गत निचला बर्मा, मालद्वीप और इण्डोनेशिया था। जातक की कथाओं से ज्ञात होता है कि भारत के बन्दरगाहों भड़ौच, सुर्पारक ओर तामलुक से सुवर्णभूमि तक का व्यापार था, जो भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच व्यापार को दर्शाता है प्लिनी के अनुसार[240] खनिज पदार्थो में सोना ओर चांदी मलयद्वीप का प्रसिद्ध था। मलयद्वीप में टिन और लोहा भी प्राप्त होता था।[241]

इस प्रकार नगरीकरण का प्रारम्भ जो ईसा से 500 पहले के लगभग हुआ पर यह ई.पू. 200 और ई. सन् 300 के बीच पराकाष्ठा पर पहुंचा। खुदाइयों से पता चलता है कि इस काल में केवल मध्य गंगा के मैदानों मे ही नही बल्कि पूर्वोत्तर हिस्सों को छोड़कर लगभग सारे देश में नगर बस गये। यही समय था जबकि देश का रोम के साथ समृद्ध व्यापार चल रहा था और यही समय था जबकि कुषाणों ने मध्यएशिया और भारतीय उपमहादेश को एक सूत्र में बांध रखा था। चीन से चलकर पश्चिम और यूरोप जाने वाला रेशम मार्ग का बड़ा भाग कुषाण साम्राज्य में पड़ता था। ईसा की दो प्रथम शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार होता रहा। मध्यएशिया के साथ व्यापार होने के कारण उत्तरी भारत के शहरों का विकास हुआ तथा रोम और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार के कारण दक्षिण भारत के नगरों का विकास हुआ।

उद्योग-धन्धे

व्यापार और उद्योग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते है। व्यापार के विस्तार के साथ ही उद्योग का भी विस्तार होता है और उद्योग के विस्तार के साथ-साथ व्यापार का भी विस्तार होता है। अधीत काल में व्यापारिक उन्नति के साथ-साथ उद्योग के विकास के भी साक्ष्य उपलब्ध हैं। छोटे-छोटे उद्योगों से प्रारम्भ औद्योगिक प्रक्रिया व साथ ही साथ कुछ बडे पूजीपति लोगों के सरक्षण में बड़े पैमानेपर औद्योगिक उत्पादन के भी प्रमाण प्राप्त होते है। व्यापारिक और औद्योगिक संस्थानों के उत्पत्ति के प्रमाण भी सुस्पष्ट है। इन औद्योगिक सस्थानों की उत्पत्ति के साथ ही उन स्थानों को एक नगर का रूप धरण करना स्वाभाविक ही था।

जैन ग्रन्थ पन्नवणा में अठारह,[242] दीघनिकाय में चौबीस,[243] महावस्तु में छत्तीस,[244] तथा रामायण[245] आदि से उद्योगों के बारे में पता चलता है। कुछ प्रमुख उद्योगों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है-

भारत में सूती वस्त्र निर्माण की प्राचीनता हडप्पाकालीन है,[246] अर्थशास्त्र से भी **वस्त्र उद्योग** के बारे में काफी विवरण मिलते हैं।[247] कौटिल्य ने लिखा है कि सूत कातने के लिए उर्ष्णा, वल्क, कार्पास, तूला, सन, क्षेम का प्रयोग होता था। महाभारत से भी हमें कार्पास, चीनांशुक, चीनपट्ट, पत्रोर्ण, पट्ट, क्षौम, दुकूल, सन, उर्ण के उल्लेख मिलते हैं।[248] अगविज्जा में भी हमें इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं।[249] सूत कातने वाले सूत्रकार के नाम से जाने जाते थे जो वुनकारों से अलग नहीं थे।[250] वस्त्र उद्योग के मथुरा, अपरान्त, कलिग, काशी, वग तथा माहिष्मती आदि भी प्रसिद्ध केन्द्र थे।[251] भारतीय सूती वस्त्र उद्योग की प्रसिद्धि विदेशों तक थी। हेरोडोटस के अनुसार भारतीय सूती कपड़ों की बनावट और सुन्दरता ऊनी वस्त्रों से भी अच्छी थी।[252] प्लिनी ने भी भारतीय सूती कपड़े की तुलना अंगूरी लता से की है।[253] एरियन ने भी भारतीय सूती कपड़ा की चमक एवं सफेदी की

प्रशसा की है।[254] सिकन्दर को मालवों ने जो उपहार दिया उनमें सूती वस्त्रों की बहुलता थी।

भारतीय ऊनी वस्त्रों की भी ख्याति जगत्प्रसिद्ध थी। 'गान्धार' के ऊनी वस्त्रों के बारे में जानकारी हमें जातकों से मिलती है।[255] कौटिल्य तो गान्धार के विषय में मौन है किन्तु नेपाल के ऊनी वस्त्र 'भिंगसी' का उल्लेख करते हैं।[256] उनके अनुसार ये 'आठ टुकड़ों को जोड़कर बनते थे और इन पर वर्षा का कोई असर नहीं होता था। कौटिल्य ने भेड़ों के रग के आधार पर ऊनी वस्त्रों के तीन प्रकारों, निर्माण विविध के आधार पर चार प्रकारों, प्रयोग के आधार पर दस प्रकारों और गुण के आधार पर छः प्रकारों का उल्लेख किया है। ऊनी कम्बलों के भी उल्लेख हमें अर्थशास्त्र में मिलते हैं। कम्बल तीन प्रकार के होते थे-शुद्ध (ऊन के असली रग के), शुद्ध रक्त (हल्के लाल रंग के), पट्टारक्त (लाल कमल के रग के)। इन्हें चार प्रकार के बनाया जाता था-खचित, वानचित्र, खण्डसंघात्य और तन्तुविच्छिन्न (अर्थशास्त्र 2.11) कोटिल्य ने विभिन्न प्रकार के ऊनी कपड़ों का भी उल्लेख किया है यथाकौचपक, (ग्वालों द्वारा ओढ़ा जाने वाला मोटा कम्बल), कुलभित्तिका (सिर पर ओढ़ा जाने वाला शाल), सोभित्तिका (बैलों के उपर बोढ़ाया जाने वाला कम्बल), सुरगास्तरण (घोड़ों की झूल), वर्णक, सलिच्छक (विस्तर पर बिछाया जाने वाला आवरण), वारवाण (जिससे पहनने के लिए कोट आदि बनाया जाय), परिस्तोम (ओढ़ा जाने वाला कम्बल) और समन्तमद्रक (हाथी पर डाली जाने वाली झूल)[257] महाभारत के सभापर्व में अर्जुन को उपहार के रूप में मिलने वाले सामानों की सूची में ऊनी वस्त्रों की बहुलता थी।[258] मनु ने भी ऊनी वस्त्रों का उल्लेख किया है।[259]

रेशमी कपड़ों के निर्माण का भी काम प्रगति पर था। सुवर्णकुड्य के रेशमी कपड़ों के अलावा काशी और चीनभूमि के रेशमी कपड़ों को भी काफी महत्वशाली माना जाता था।[260] पुंड्र में भी रेशमी वस्त्र तैयार किए जाते थे।[261]

मौर्य शासकों ने वस्त्र निर्माण एवं सूत तैयार करने के कार्य पर नियंत्रण करने के लिए सरकार की तरफ से सूत्राध्यक्ष नामक आमात्य की नियुक्ति की थी।[262] जो कुशल कारीगरों द्वारा सूत, कवच और रस्सी बनवाता था। ऊन, वल्कल, कपास सेमर की रूई, सन और क्षौम के सूत विधवा, अंगहीन अनाथ कन्याए, सन्यासिनियां, अपराधिनिया, वेश्याओं की वृद्ध माताएं, राजदासियां और देवदासिया कातती थी। अंगविज्जा के अनुसार वस्त्र विक्रेता समाज के धनिक (सारवान) व्यापारियों के रूप में माने गयें।[263]

बौद्ध ग्रथों के अनुशीलन से विकसित **काष्ठ उद्योग** की जानकारी मिलती है। जातकों से पता चलता है कि वर्धकी लोगों द्वारा पोतों, गाड़ियों, रथों के अलावा लकड़ी के मकानों का निर्माण किया जाता था।[264] पांच सौ बढ़इयों के द्वारा बड़े-बड़े पल्ले और पटरें तैयार करने के लिए नदी को पारकर जगल में प्रवेश करने का भी वर्णन मिलता है।[265] महाडमग्ग जातक से पता चलता है कि "तीन सौ वर्धकी गंगा के उपरी इलाके के जगलों में उपयोगी लकडियों को पसन्द करने के लिए भेजे गये थे ताकि तीन सौ पोतों के साथ-साथ शहर बनाने के लिए अच्छे सामान लाया जा सके।[266] मिलिन्दपन्हों से यह जानकारी मिलती है कि लकड़ी को काटने के लिए वर्धकी लोग पहले उस पर चिन्ह खींचते थे और बाद में उसी के अनुसार काटते थे। काटते समय मुलायम हिस्सों को निकाल दिया जाता था एव कड़े हिस्सों को रख लिया जाता था।[267] कौटिल्य ने ऐसे वृक्षों का उल्लेख किया है जो इस उद्योग की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण थे और जिनका उपयोग बहुधा इमारतों के निर्माण में किया जाता था।[268] मेगस्थनीज ने भी भारतीय काष्ठ उद्योग का जिक्र किया है।[269] पतंजलि ने वर्धकी को एक महत्वपूर्ण शिल्पी माना जो प्रत्येक गांव में निवास करते थे। पाणिक ने लिखा है कि कुछ वर्धकी ऐसे थे जो कि दूसरों के घर जाकर काम किया करते थे जबकि कुछ अपनी कार्यशाला में ही रहकर स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे।[270] समुद्दवणिक जातक से जानकारी मिलती है कि कुछ वर्धकी सामानों को तैयार करने के लिए सम्बन्धित लोगों से पहले ही पैसा ले लिया करते थे।[271]

भारतीय काष्ठ उद्योग की प्रशसा में स्ट्रेबो ने काष्ठनिर्मित पाटलिपुत्र के राजप्रासाद का उल्लेख किया है। पाटलिपुत्र के पास हुई खुदाई में मिले लकड़ी के मंचों के रूप में प्राप्त साक्ष्य भी इस विषय पर काफी प्रकाश डालते हैं।[272] काष्ठ उद्योग के महत्व का प्रमाण इससे भी हो जाता है कि अर्थशास्त्र में जंगलों की देखरेख के लिए कुष्याध्यक्ष की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।[273]

आर्थिक व्यवस्था में **'धातु उद्योग'** का महत्वपूर्ण स्थान था। घातु उद्योग के बारे में हमें साहित्यिक एव पुरातात्विक दोनों साक्ष्यों से काफी सामग्री मिलती है। वैदिक साहित्य में हिरण्य, सुवर्ण्य, निष्क, अयस आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[274] उत्तर वैदिक काल में मनुष्य स्वर्ण और कांस्य के साथ-साथ रजत, सीसा और टिन का प्रयोग करने लगा था।[275] मिलिन्दपन्हों से हमें सोने, चांदी, टिन, लोहा आदि की जानकारी मिलती है।[276] अर्थशास्त्र से भी हमें धातु उद्योग के बारे में ढ़ेर सारी सामग्री मिलती है।[277] अर्थशास्त्र में प्राप्त साक्ष्यों के अनुशीलन से हमें इस उद्योग के ऊपर राज्य का काफी नियंत्रण था, ऐसा लगता है। कौटिल्य ने खन्याध्यक्ष, लोहाध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष नामक राजकीय कर्मचारियों का उल्लेख किया है जो कि इसी उद्योग से सम्बन्धित थे। कौटिल्य ने आकराध्यक्ष नामक अमात्य को निर्देश दिया है कि उसके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी मैदानों और पहाड़ों में स्थित खानों का पता लगाये। आकराध्यक्ष के अधीन कार्य करने वाला कर्मचारी लोहाध्यक्ष काफी महत्वपूर्ण समझा जाता था जो ताम्र, त्रपु, सीसा, वैकृन्तक आदि धातुओं के कारखानों का सचालन करता था।[278] खन्याध्यक्ष नामक कर्मचारी सामुद्रिक आकरों से शंख, वज्र, मणि मुक्ता, प्रवाल आदि निकलवाने की व्यवस्था करता था। खनिज पदार्थो में नमक की भी गिनती होती थी जिस विभाग की देखभाल लवणाध्यक्ष के द्वारा की जाती थी। चांदी सोने को शुद्ध करने तथा उससे विविध प्रकार के आभूषण बनाने का कार्य सुवर्णाध्यक्ष नामक अधिकारी के अधीन था। इस प्रकार लगता है कि धातु उद्योग के उपर राज्य का नियंत्रण था।

बहुसख्यक देशी ओर विदेशी साक्ष्यों से भी धातु उद्योग की जानकारी मिलती है। पाचवी सदी ईसापूर्व में क्टेसियस नामक जिन उत्कृष्ट तलवारों का जिक्र किया गया है वे भारतीयों द्वारा पर्सियन राजा को उपहार स्वरूप दी गयी थी।[279] इसके अलावा भारतीय नरेश पोरस ने सिकन्दर को भारतीय इस्पात की सौ टैलेन्ट्स उपहार मे दिया था।[280] मार्शल महोदय को भीर टीले के उत्खनन के दौरान वसूला, चाकू, और खुरपी के साथ-साथ कृषि के ढेर सारे उपकरण मिली।[281] बोध गया में हुए उत्खनन से तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व से सम्बन्धित लोहे की वस्तुए मिले।[282] तिन्नेवेली के कब्रिस्तान से भी चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व से सम्बन्धित लोहे के उपकरण मिले।[283] रामपुरवा (उत्तरी बिहार) में पाये गये अशोक स्तंभ पर ताबे की चटखनी और उसी काल के तांबे के सिक्के विकसित धातु उद्योग के ही प्रमाण है।[284] तक्षशिला की खुदाई में मार्शल को चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व पहले के किसी भी प्रकार के ताबे और कासे धातु की वस्तुएं नहीं मिल, इसी आधार पर उन्होने माना कि इन दोनों का प्रयोग बाद में शुरू हुआ होगा।[285] लेकिन विद्वानों ने इसका विरोध किया और कहा कि कासे के बारे में यह बात लागू हो सकती है, तांबे के विषय में नहीं। तक्षशिला की ही तरह स्थिति पूरे भारत वर्ष में नहीं रही होगी।[186] रजतमुद्राओं का प्रसार भी द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व में अवश्य हो चुका था। पेरिप्लस ने लिखा है कि भारतवर्ष में रजत और टिन दोनों का आयात पश्चिमी देशों से होता था।[287] मार्शल ने माना कि विदेशों से राजनीतिक सम्बन्धों के ही माध्यम से भारत में रजत का प्रसार हुआ जो सीरिया, एशियामाइनर, साइप्रस आदि देशों से आता था। चरकसंहिता[288] और मनुस्मृति[289] में पीतल के प्रयोग की बात भी स्पष्ट हो जाती है। भारत धातु उद्योग की प्रशंसा में हेरोडोटस ने लिखा है कि भारत से पारसीक साम्राज्य को तीन सौ टेलेण्ट्स सोना प्राप्त होता था।[290] स्ट्रेबो ने भी एक आनन्दमयी जुलूस का जिक्र किया है जिसमें सरकारी नौकरों कीमती और सोने की जड़ी हुई बहुत सी वस्तुएं लेकर चलते थे।[291]

वैदिक साहित्य से 'चर्मउद्योग' के बारे में भी जानकारी मिलती है जहां कि रथ हांकने के लिए रस्सियां, चाबुक, गोफना आदि का निर्माण किया जाताा था।[292] भारत में जगलों की बहुलता होने से तमाम जंगली पशुओं का निवास स्थल जंगल ही था, परिणामस्वरूप जगली जानवरों के शिकार करने से कच्चे माल के रूप में चमड़े की प्राप्ति हो जाया करती थी। मौर्य प्रशासन जंगलों की रक्षा करने के लिए सचेष्ट था। जातक[293] से ज्ञात होता है कि चमडे से रस्सिया, जूते, छाते आदि बनते थे। बड़े-बड़े झोले भी चमड़े के निर्मित हुआ करते थे।[294] पाणिनि[295] ने भी उल्लेख किया है कि दुबाली (रस्सी), सकट, जूता आदि चर्मकारों द्वारा ही निर्मित किया जाता था। चमड़ों के फंदे, एक तल्ले के जूते और बड़े-बड़े झोले बनाने का उल्लेख प्राथमिक बौद्ध साहित्य में मिलता है।[296] छदन्तजातक से चमडे से निर्मित होने वाली विभिन्न प्रकार की दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं का उल्लेख मिलता है।[297] महावग्ग[298] से जानकारी मिलती है कि जूते प्रायः, शेर, चीता या बिल्ली आदि की खालों से बनाये जाते थे। एरियन[299] ने भारतीय पोशाकों का उल्लेख करते हुए चर्मकारों के कौशल का भी उल्लेख किया है। ये लोग चमड़े के जूते[300] के अलावा जल ढोने के लिए भी सामानों[301] का निर्माण किया करते थे। कौटिल्य ने[302] अर्थशास्त्र में विविध प्रकार की खालों का उल्लेख किया है जो मुख्य रूप से इस उद्योग में काम आया करती थी। कान्तावर्ण (मोर के गर्दन के रंग की तरह इसका भी रंग होता था), उत्तरपर्वतक (पर्वतों से प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रकार की खालें) विसी (इस खाल के ऊपर बड़े बड़े बाल होते हैं), महाविसी (श्वेत रंग की सख्त खाल होती है), श्यामिका (कपिल रग की खाल) कालिका (कपिल और कपोत रंग की खाल होती थी), कदली, चन्द्रोत्तरा (चांद की तरह चमकने वाली खाल), सामूली (गेहूंए रंग की खाल), सातिना (काले रंग की), नलतूला और वृत्तपुच्छा (भूरे रंग की खाल) खालें मुख्य हैं। कौटिल्य ने ऐसे चर्मो को इस उद्योग के लिए आवश्यक एवं श्रेष्ठ माना है जो नरम, चिकना और प्रभूत बालों से युक्त हो। नियार्कस ने लिखा है कि भारतीय लोग श्वेत रंग के जूते पहनते हैं।

ये जूते बढिया होते हैं जिनकी एड़िया कुछ ऊँची होती थी या बनायी जाती थी और इन्हें पहनने वाला कुछ ऊँचा प्रतीत होने लगता था।[303] विदेशियों द्वारा चर्म उद्योग की प्रशंसा किया जाना .निश्चित रूप से इस उद्योग के विकसित होने का ही प्रमाण है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में **शराब उद्योग** का भी उल्लेख किया है। इस उद्योग के ऊपर राज्य का नियत्रण था लेकिन कुछ परिस्थितियों में अन्य लोग भी शराब का निर्माण किया करते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि विशेष कृत्यों .के अवसर पर कुदुम्बी लोग श्वेत सुरा का निर्माण स्वंय कर सकते है और औषधि के प्रयोजन से अरिष्टों का निर्माण स्वंय कर सकते हैं। इसी प्रकार उत्सव यात्राओं के अवसर पर चार दिन के लिए सभी को सुरा निर्माण की स्वतत्रता थी।[304] पतंजलि[305] ने शराब बनाने का उल्लेख किया है जो कि इस उद्योग की काफी संहयोग प्रदान किया करते थे। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि सुरा-निर्माण में दक्षव्यक्तियों को राजकीय सेवाओं में रखा जाय। मौर्य शासकों ने इस उद्योग के उपर राजकीय नियत्रण रखते हुए सुराध्यक्ष नामक आमात्य की नियुक्ति की जिसके अधीन यह उद्योग सचालित होता था। शराब की बिक्री का प्रबन्ध नगरों, देहातों और कस्बों, छावनियों में सर्वत्र किया जाता था।[306] कौटिल्य ने छः प्रकार की सुरा का उल्लेख किया है जो इस उद्योग के विकसित रूप को ही प्रमाणित करता है यथा-मेदक, प्रसन्न, आसव, अरिष्ट, मेरेय और मधु। लेकिन कौटिल्य ने साथ-साथ सुरा सेवन पर नियंत्रण का भी प्रावधान किया था। उसने लिखा है कि कर्मचारी और कर्मकर निर्दिष्ट कार्य में प्रमाद न करें, आर्यजन कहीं मर्यादा का अतिक्रमण न कर जाय और तीक्ष्ण प्रकृति के व्यक्तियों की उत्साह वर्धक शक्तियां क्षीण न हों, अत: उन्हें केवल निर्धारित मात्रा में ही शराब दी जाय।[307] मेगस्थनीज[308] ने लिखा है कि भारतीय लोग यज्ञों के सिवाय कभी मदिरा नहीं पीते थे, उनका पेय जौ के स्थान पर चावल द्वारा निर्मित एक रस है। कौटिल्य ने सुरा के निर्माण में प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं एवं उनकी मात्रा का भी जिक्र किया है। एक द्रोण जल, आधा आढ़क चावल और तीन प्रस्थ किण्व मिलाकर मैदक सुरा तैयार की जाती थी। मैदक

के निर्माण में जल और चावल का अनुपात आठ और एक का होता था, खमीर उठाने के लिए उसमें किण्व डाला जाता था। प्रसन्न सुरा को बनाने के लिए अन्न की पीठी के अतिरिक्त दालचीनी आदि मसाले भी पानी में मिलाए जाते थे।[309]

'मिट्टी के बर्तन' बनाने का भी उद्योग काफी विकसित हो चुका था। वैदिक साहित्य में कुलाल शब्द का उल्लेख हुआ है। जातकों से भी प्रमाणित होता है कि समाज में मिट्टी के बर्तन बनाने वाले मौजूद थे।[310] बर्तनों को बनाने के लिए चाक का प्रयोग किया जाता था।[311] पाणिनि की व्याकरणवृत्ति[312] से पता चलता है कि कुछ बर्तन बनाने वाले राजा के ही यहां रह कर राजकर्मचारी के रूप में कार्य करते थे क्योंकि राजकुलाल शब्द के उल्लेख से ऐसा ही आभास मिलता है। मिट्टी के बर्तनों में तश्तरी, भगोना, घड़े का निर्माण चाक के ही द्वारा किया जाता था। अरिकामेडु में हुए उत्खनन के दौरान पूर्वीभूमध्य सागरीय क्षेत्रों से आयात किए गये मिट्टी के बर्तनों के अलावा स्थानीय लोगों द्वारा निर्मित बर्तन भी पर्याप्त मात्रा में मिले हैं, जिनके बारे में अनुमान किया जाता है कि इनका निर्माण दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखकर किया गया होगा। थाली पात्र परम्परा में भी अधिकाश बर्तन चाक निर्मित ही हैं। अनाज भरने के लिए निर्मित बड़े-बडे, घडे, मटके ही मुख्य बर्तन पाये गये हैं। बर्तन प्रायः भूरे एवं लाल रंग के है जिनके ऊपर गहरे लाल रग की पट्टियां है। अरिकामेडु के अलावा रंगमहल, वैराट, तक्षशिला, वैशाली, हस्तिनापुर, राजघाट, कौशाम्बी, उज्जैन, रूपड़, नवदाटोली के उत्खनन से भी काफी मात्रा में बर्तन मिले हैं जो इस उद्योग के विकसित रूप को ही प्रकट करते है। बाण से बचने के लिए ढ़ाल बनाने का कार्य भी इस उद्योग के ही अधीन आता था।[313] जैनग्रन्थ आवश्यकचूर्णि[314] से पता चलता है कि कुम्भकार अपने बर्तनों को कुम्भशाला में निर्मित करता था, पकनशाला में पक जाने के बाद भाण्डशाला में उन्हें एकत्रित करता था।

भारत में मूर्तिपूजा इस काल तक काफी प्रचलित हो चुकी थी तथा मूर्तियों का निर्माण भी व्यापक स्तर पर हुआ करता था, इसके बारे में सन्देह की कोई जगह नहीं है। अगविज्जा में[315] व्यावसायियों की सूची में देवणों (देवताओं की मूर्ति का व्यापार करने वाले) का उल्लेख आया है इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि यही काल गान्धर, भरहुत, साची, मथुरा, सारनाथ, कौशाम्बी, अमरावती, बोधगया इत्यादि शैली के प्रादुर्भाव और विकास का काल है। इसी काल से संग्रहीत मूर्तियां और तक्षणकला के अवशेषों की बहुलता इसी बात की परिचायक है कि मूर्तियों का निर्माण करना एक विकसित उद्योग का रूप ले चुका था। इसी काल से इतनी अधिक मात्रा में भिन्न-भिन्न प्रकार एवं बहुसंख्यक मूर्तियों का मिलना सिर्फ उस काल के धार्मिक विश्वास और कलात्मकता का परिचायक मात्र ही नहीं बल्कि साथ-साथ इस बात के भी प्रमाण है कि मूर्ति बनाना और उसका व्यापार करना एक विकसित उद्योग का रूप ले चुका था। पत्थर की मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी की भी मूर्तियां बनायी जाती थी जिसके प्रमाण ज्यादे मात्रा में तो नहीं मिले हैं फिर भी मिट्टी की मूर्तियां और खिलौने बनाने की प्रथा काफी प्रवलित थी। उत्खनन से ऐसा प्रतीत होता है कि धातु निर्मित मूर्तिया बनाने की प्रथा इस काल में सम्भवतः उतनी प्रचलित नहीं थी जितनी मध्यकालीन दक्षिण भारत में हमें मिलती हैं।

'दन्तकारी उद्योग' भी इस युग में काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था। सिलावन्नग जातक[316] से जानकारी मिलती है कि 'वाराणसी' दन्तकारी उद्योग का केन्द्र बन चुका था और उस शहर में दन्तकारी के काम करने वालों की एक अलग ही बस्ती बन चुकी थी, यह बात 'दन्तकारवीथी' शब्द से प्रमाणित होती है। कलिंगबोधिजातक[317] में कलिग राज्य के दन्तपुर शहर का उल्लेख मिलता है जो इसी उद्योग के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। इसके अलावा कलिंग, अंग, करूष आदि स्थान भी एक विकसित दन्तकारी उद्योग के केन्द्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। कौटिल्य ने[318] इन स्थानों के हाथियों को इस उद्योग के लिए सबसे अच्छा तथा दशरन और पश्चिमी भागों की हाथियों को

मध्यम एव सौराष्ट्र-पाचजन्य प्रदेश की हाथियों को घटिया किस्म का माना। हाथी दांत से बनी वस्तुओं की माग समाज में काफी थी। डा0 जयमल राय[319] ने लिखा है कि हाथियों के शिकार करने वालों का एक अलग अपना सभुदाय रहा होगा जो कि प्रायः हाथियों का शिकार करके उनसे प्राप्त दात के माध्यम से अपनी जीविका चलाते थे। कासवजातक[320] से जानकारी मिलती है कि वाराणसी के एक निर्धन व्यक्ति ने अपने को किस तरह हाथी के शिकारी के रूप में बदला। सीलवन्नाग जातक[321] से पता चलता है कि शिकारी शिकार करने जगलों में जाया करते थे। हाथी दांत से बनने वाली वस्तुओं का प्रयोग समाज के धनी लोग की प्रायः किया करते थे।[322] बच्चों के लिए बन्दरों की हड्डियों से छोटी-छोटी वस्तुए तैयार किए जाने का उल्लेख हमें मिलता है,[323] दन्तकारी उद्योग का प्रमाण हमें व्यापक रूप से दन्तकारों के यहाँ देखने को मिलता है, जो कुर्सियों, राजसिंहासनों, खम्भों आदि में जड़े होते थे। कैकेयी के राजमहल की सभी चौकियों एवं आसनों में हाथी दांत का प्रयोग किया गया था।[324] कुम्भकरण के राजमहल के मेहराब को हाथी दांत के प्रयोग द्वारा ही सजाया गया था। उसके पलंग के पैर भी हाथी दांत से जड़े थे।[325] ये सभी बातें विकसित दन्तकारी उद्योग की बात करती हैं।

शिल्पी तथा व्यवसायी जनाकीर्ण निवास स्थानों में ही रहते थे क्योंकि उनकी कला का मूल्य, क्रय-विक्रय की सुविधा के कारण वही पर था। अल्पसंख्यक ग्रामों में उनके व्यवसायों का सुचारू रूप से चलना अत्यन्त दुष्कर था। कला तथा शिल्प के इस प्रकार के विकास तथा केन्द्रीकरण ने ऐसे अनेक व्यावसायिक केन्द्रों को जन्म दिया जिन्होंने कालान्तर में शीघ्र ही सुविकसित नगरों का रूप धारण कर लिया।

मुद्रा (विनिमय का साधन)

नागरिक जीवन का विविध विकास इस युग के सामाजार्थिक दृश्य को पिछले युग से विभक्त करता है। व्यवसायिक प्रतिभाजन से उत्पन्न व्यापार को स्वयं एक विनिमय-साधन

की अपेक्षा रहती है और मुद्रा का आविर्भाव इस अपेक्षा की पूर्ति करता हुआ सामाजार्थिक क्षेत्र में एक नयी शक्ति को जन्म देता है जिससे सामाजार्थिक क्षेत्र में परिवर्तनशीलता आती है। नगरीय जीवन के उन्नत स्तर की पहचान चादी के बने आहत सिक्कों से होती है। इस प्रकार बुद्ध के समय में भारतीय सस्कृति सर्वप्रथम मुद्रा के युग में अवतीर्ण हो रही थी। इस काल में अनेक धनाट्य श्रेष्ठियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं अंग के मेण्डक, कोशल के अनाथपिण्डक और कौशाम्बी के घोसक।

जातकों तथा अन्य पालि साहित्य में व्यापार के विषय में अत्यन्त विशद् विवरण प्राप्त होते हैं। विनिमय की सम्पूर्ण व्यवस्था में इस युग में परिर्वतन हुआ। मौद्रिक प्रणाली की स्थापना एवं उनका उत्तरोत्तर विकास इनमें विशेष सहायक था। कार्षापण शब्द लगभग छठीं शताब्दी ई.पू. में प्रचलित हुआ एवं इसका सर्वप्रथम प्रयोग 'सामविधान ब्राह्मण' में प्राप्त होता है। बौद्ध ग्रन्थ पाराजिक में भिक्षुओं द्वारा कार्षापण मांगने का उल्लेख है जिससे लोग चकित हो गये थे कि श्रमण सिक्के मांगते है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'रूप्य'[326] तथा अर्थशास्त्र में 'रूप' का उपयोग भी सिक्के के लिए है जो कालान्तर में 'रूपया के नाम से स्वीकृत हुआ जैसा कि आज भी चलन में है।[327]

ए० एल० बाशम[328] के अनुसार आयताकार या वृत्ताकार धातु के टुकड़ों का प्रयोग ईसा पूर्व छठी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। इनकी निश्चित तोल होती थी और इन पर अनेक प्रकार के चिन्ह जैसा कि सूर्य, पर्वत, वृक्ष, की शाखाएं, मानव, खरगोश, कुत्ता, बिच्छू, सांप आदि की आकृतियां ठप्पा मारकर खेदी जाती थी। इन्हें आहत सिक्के कहते हैं।

ये चिन्ह श्रेष्ठियों या व्यापारिक श्रेणियों के थे इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। भण्डारकर कर[329] ने बुद्धघोष रचित 'विसुद्धि मग्गों' के एक अंश की ओर ध्यान आकर्षित किया था, जिसमें कथन है कि हिरण्यक (व्यापारी) के फलक पर रखी हुई

कार्षापण राशि को बालक ग्राम्य पुरूष एवं हिरण्यिक भिन्न-भिन्न दृष्टियों से समझेंगे। केवल हिरण्यिक ही यह समझेगा कि कोई कार्षापण किस आचार्य ने किस ग्राम्य या नगर में किस पहाड़ी या नदी के तट पर बनाया। इससे प्रकट है कि आहत मुद्राओं पर बने चिन्हों का निश्चित आशय था। ये व्यापारियों, श्रेष्ठियों या उनकी श्रेणियों से सम्बन्धित चिन्ह थे। इस भाति आहत मुद्रायें न केवल राज्यों द्वारा वरन् व्यापारिक श्रेणियों द्वारा भी चलन के लिए प्रसारित होती थी।[330]

बौद्ध ग्रंथों से निष्क, सुवर्ण, कांस, पाद, मासक, काकणिक और कार्षापण नामक सिक्कों का उल्लेख मिलता है। पाणिनि ने भी कार्षापण; पण, पाद, माष तथा शाण नाम मुद्राओं के विषय में जानकारी दी है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रमुख रूप से दो सिक्कों का उल्लेख मिलता है, पण और मासक। पण चांदी का सिक्का था और उसके आधे, चौथाई और आठवें भाग के सिक्कों का भी प्रचलन था मासक ताबे का सिक्का था उसके भी आधे, चौथाई और आठवें भाग के सिक्के चलाते थे। ताबे के सिक्के का चौथाई भाग काकणि कहलाता था। अधिकतर व्यापार चादी के सिक्के 'पण' के माध्यम से होता था।[331] अधिकतर सरकारी कर्मचारियों का वेतन भी 'पर्णो' में दिया जाता था।[332] अर्थशास्त्र से हमे यह भी ज्ञात होता है कि सिक्के ढालने के लिए सरकारी टकसाल थी और अधिकारी उसका निरीक्षण करते थे। इस काल में सोने का प्रचलन कम था लेकिन अर्थव्यवस्था में व्यापार जुर्माने, भूमिकर आदि में सिक्कों का प्रचलन खूब था।

मौर्योत्तर काल में सिक्कों के चलन में अत्याधिक विकास हुआ। इस युग में विदेशी राजाओं ने या प्रमुख जनपदों जैसे पांचाल, मथुरा, कौशाम्बी, उज्जैन आदि ने अनेक प्रकार के सिक्के चलाये। व्यापार में सुविधा की दृष्टि से कुषाण शासकों ने सोने के अधिकाधिक सिक्के चलाये। कुषाण ही प्रथम राजवंश था जिसने स्वर्ण के सिक्कों को

निरतर चलाया। कुषाण शासकों द्वारा बडे पैमाने पर सोने के सिक्के चलाने का कारण सम्भवतः भारत का रोम के साथ घनिष्ठ एवं प्रगति शील व्यापार था। कुषाण शासकों की अनेक मुद्रायें रोम के राजाओं के सिक्कों के सदृश निर्मित की गयी। रोमन शासकों की स्वर्ण मुद्रा प्रायः 2 ग्रेन की होती थी इसी के अनुकरण पर विमकदफिसेस और कनिष्क जैसे शासकों ने इतने ही वजन का सिक्का अपने साम्राज्य में चलाया इस युग में व्यापार में विनिमय के माध्यम रूप में साहित्य में तीन प्रकार के सिक्कों का उल्लेख मिलता है- दीनार, पुराण और कार्षापण।[333] पहले प्रकार के सिक्कों का उल्लेख दिव्यावदान में भी मिलता है।[334] महावस्तु[335] में चांदी के सिक्कों का तथा अवदान शतक[336] में सुवर्ण के टुकड़ों (सुवर्ण पिटक) का उल्लेख है लेकिन यह कहना कठिन है कि सुवर्णपिटक ही दीनार था या अलग से असमान मूल्य वर्ग के टुकड़े थे।[337] स्वर्ण सिक्कों का प्रयोग सम्भवतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में किया जाता था क्योंकि कुषाण राजाओं द्वारा निर्मित तांबे के सिक्के भी प्राप्त होते हैं। कुषाण शासकों द्वारा चलाये गये सिक्के अहिच्छत्र,[338] पाटलिपुत्र,[339] कुमराहट,[340] वैशाली,[341] सोहगौरा,[342] मैसन,[343] तथा अंतरजी खेड़ा,[344] से प्राप्त हुए है इस प्रकार कुषाण शासकों द्वारा चलाये गये सिक्के आर्थिक प्रगति के नवीनकरण की ओर इंगित करते है।

क्रय-विक्रय तथा व्यापार आदि में इनका प्रयोग सामान्य था किन्तु इनके चलन के साथ बैंक की व्यवस्था को बढ़ावा मिला इससे श्रेष्ठी वर्ग सम्पन्न हुआ एवं व्यापार का विकास सम्भव हुआ।[345] जिससे नगरीकरण में बढाकर मिलना स्वाभाविक था।

बाजार

लगभग छठीं शताब्दी ई.पू. में प्रथम बार वाणिज्य एवं वयवसाय में क्रय-विक्रय के लिए प्रायः केवल वैयक्तिक दुकानें और प्रमुख बाजार थे, परन्तु शहरों में दुकान और बाजार के कई रूप थे-

1 नगरों में कुछ सडके थी जिन पर केवल कुछेक वस्तुएं ही मिलती थी कि इनमें 'दन्तकारवीथी' ओर 'रजकवीथी' प्रमुख सड़के थी जहां केवल हाथी दांत के सामान या फिर जुलाहों द्वारा बनी वस्तुएं ही बिकती थीं।

2 बहुमूल्य पत्थर एव फूल को बेचने के लिए उप बाजार थे, जहां पर केवल इससे सम्बद्ध वस्तुएं बिकती थीं।

3. दीर्घ बाजार थे जिनमें दो-दो हजार तक दुकाने थी जिनमें विभिन्न वस्तुएं बिकती थी।

4. नगर के द्वार पर सामयिक बाजार लगते थे जहां पर केवल मछली, हरी सब्जी आदि कच्ची अथवा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुए बिकती थी और नगर के बाहर कसाई गृह और मद्य बेचने वाले सुरागृह थे।

बाजार में मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में बुद्धकाल में भी उत्तर वैदिक काल की मोल-भाव के द्वारा कीमत निर्धारण की विधि चलन में थी। जातकों[346] में भी राजाओं ने मूल्य निर्धारकों (राज्य के पदाधिकारियों) की नियुक्ति की थी जिनका कार्य वस्तुओं का उचित मूल्य-निर्धारण करना होता था। परन्तु व्यवहारिक रूप से मूल्य निर्धारण- उत्पादक उपभोक्ता तथा मध्यस्थ व्यक्ति के द्वारा परिस्थितियों के अनुकूल ही निर्धारित होता था। वस्तुओं के मूल्य उनके स्तरों के अनुसार तथा मांग के अनुरूप परिवर्तन शील होते थे। एक घोड़े का मूल्य एक हजार कार्षापण से छः हजार कार्षापण तक हो सकता था। जातक काल के व्यापारियों की व्यापारिक प्रतिक्रियाएं स्वतः स्पष्ट करती है कि वस्तुओं के पूर्व निश्चित मूल्यों की भी अवहेलना की जाती थी और सामान्य प्रचलित मूल्यों पर ही आर्थिक विनिमय किया जाता था। इस काल के व्यापारी अधिक लाभ के इच्छुक रहते थे परन्तु

व्यापारियों के द्वारा अर्जित लाभ पर उनका पूर्ण स्वामित्व नही होता था। व्यापारियों को सरकार को आयकर देना पड़ता था।

कार्यो में विशिष्टीकरण के साथ-साथ बाजारों का भी विशिष्टीकरण होने लगा था। नगरों के विशेष भागों में विशेष पेशे के लोगों के निवास का अनुमान दंतकार वीथी, रजक वीथी आदि शब्दों से ऐसे ही पेशे के लोगों के स्थानीयकरण द्वारा इनके संगठनों की स्थापना हुई, जिन्हें प्राचीन साहित्य में श्रेणी कहा गया है। कौटिल्य ने नगर में विभिन्न वर्गो के लिए पृथक-पृथक स्थान सुरक्षित रखा है।[348]

मौर्ययुग तक राज्य का बाजार पर नियंत्रण होने के साक्ष्य प्राप्त होते है। राज्य माप-तौल की जांच को भी देखता था। बिना राजकीय मुहर के माप-तौल के बाटों का प्रयोग करने पर अधिकारी 27½ पण का जुर्माना लगाता था।[399] चुंगी अधिकारी (शुल्काध्यक्ष) वस्तुओं के अनुसार मूल्य का 1/5 से 1/25 भाग चुंगी के रूप में लेता था।[350] विकसित होते व्यापार तथा उद्योग धन्धों के फलस्वरूप बाजारों का भी विकसित होना स्वाभाविक ही था। अन्ततः ये बाजार नगरों का रूप धारण करते चले गये।

अतः व्यापार, उद्योग मुद्रा प्रचलन एवं अनेकानेक भवनों के अवशेषों के आधार पर हम यह कह सकते है कि द्वितीय शताब्दी ई. तक आते-आते नगरीकरण अपनी पराकाष्ठा पर था।

2. सामाजिक रूपान्तरण

लगभग छठी शताब्दी ई0पू0 से सामाजिक रूपान्तरण की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई वह लगभग 200 ई0 तक कई अवस्थाओं से होकर गुजरी। इस दौरान सामाजिक स्तरीकरण क्रमशः जटिल होता गया। वर्षो के अंतर्गत जातियों के अनेक भेद स्थापित हुए, जिनका सर्वाधिक भार शूद्रों पर पड़ा। इस काल में हम उन्हें उत्तरोत्तर कृषक मजदूरों के रूप में पाते हैं, जिनके विशेषाधिकार समाप्त होते गये। वैदिक 'विश' के सम्मान्य सदस्यों के बजाय अब वे समाज के निम्न वर्ण में परिगणित हो गये थे। धार्मिक, आर्थिक अधिकार, सुरक्षा, वैधानिक स्थिति आदि सभी स्थ्तियों में उनकी दशा दयनीय होती चली गयी। किन्तु सात वाहनों के समय में उनके पुनः उत्कर्ष के सूचना उपलब्ध है, जो बौद्ध संघ को उनके द्वारा दिये गये दानों से तथा संघों के लिए उनके द्वारा बनवाये चैत्यों व विहारों से प्रकट होती है। अध्ययन की सुविधा एवं स्पष्टीकरण के लिए हम अधीतकाल को दो चरणों में विवेचित करने का प्रयास करेंगे। लगभग छठी शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0पू0 तक एवं द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 तक।

लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से द्वितीय ।ता।ब्द। ईसा पूर्व तक :

वैदिक काल के अंत तक यद्यपि चार वर्णो का प्रादुर्भाव हो चुका था, किन्तु पूर्ववर्ती जनजातीय व्यवस्था के बचे-खुचे प्रभाववश इनमें अंतरों की तीव्रता विद्यमान नहीं थी। ब्रह्म एवं क्षत्र के बीच वर्चस्व के लिए द्वन्द्व था। वैश्य एवं शूद्र 'विश' के सम्मान्य सदस्य थे। धार्मिक अनुष्ठानों में शूद्र की भूमिका वर्जित नहीं थी। सम्पन्न शूद्रों का भी समाज में अस्तित्व था जैसा शतपथ[350ए], पंचविंश[351] ब्राह्मण तथा मैत्रायणी संहिता[352] से स्पष्ट है। किन्तु यह उत्तरवैदिक व्यवस्था छठी शताब्दी ई0पू0

के बाद उत्तरोत्तर समाप्तप्राय होती गयी, एवं अंततोगत्वा वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन प्रखर हुआ तथा इसमें जातियों का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रस्तुत काल में वर्ण व्यवस्था के आधार पर समाज का स्तरीकरण परिलक्षित होने लगता है। अलग-अलग जीवन विधियों तथा सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित होकर वर्गो का एक दूसरे से पार्थक्य और स्पष्ट होने लगा। धर्म-सूत्रों में वर्ण-धर्म पर अलग-अलग खण्ड मिलते है, जिनमें वर्णो के कर्तव्यों और अधिकारों का क्रमबद्ध विवरण प्राप्त होता है। वर्णो को जन्म[353] पर आधारित मानने की प्रवृत्ति भी दिखाई देने लगती है जो जाति-व्यवस्था के विकास के एक पक्ष की द्योतक है।

सूत्र-ग्रंथों में ब्राह्मणों को प्रथम स्थान दिया गया है।[354] इसके विपरीत बौद्ध ग्रंथों में क्षत्रियों को प्रथम स्थान तथा ब्राह्मणों को द्वितीय स्थान दिया गया है।[355] पर बलवती विचारधारा के अनुसार ब्राह्मणों का स्थान समाज में सर्वोपरि था, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि सूत्रों में उन ब्राह्मणों का उल्लेख भी मिलता है, जो अशिक्षित थे तथा वर्ण-धर्म का पालन न कर अन्य हीन व्यवसायों द्वारा जीवन-यापन कर रहे थे। दूसरी ओर बौद्ध ग्रंथों में भी गुणी एवं विद्वान ब्राह्मणों की महिमा वर्णित है। इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बौद्ध एवं ब्राह्मण परम्परायें ब्राह्मणों की तत्कालीन वास्तविक स्थिति की परिचायक है। गुणी, विद्वान तथा सच्चरित्र ब्राह्मणों का स्थान समाज में अभी भी सर्वोपरि था। उन्ही में से कुछ ब्राह्मण जो वेदज्ञान से रहित थे तथा अन्य व्यवसायों द्वारा जीवन-यापन कर रहे थे अवनति की ओर उन्मुख होने लगे थे। अष्टाध्यायी में आये कुब्राह्मण तथा महाब्राह्मण से भी कुछ इसी प्रकार की स्थिति का आभास मिलता है।[356]

ब्राह्मणों के कर्तव्यों में वेदाध्ययन, यज्ञ कराना तथा दान लेना प्रमुख था।[357] पुनः धर्मसूत्रों में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।[358] गौतम ने लिखा है कि राजा ब्राह्मणों को छोड़कर सबका शासक है।[359] बौधायन ने ब्राह्मणों को अदण्डनीय मानते हुए भी अनैतिक ब्राह्मणों के लिए शरीरदण्ड तथा निष्कासन का नियम निर्धारित किया,[360] जबकि गौतम ने ब्राह्मणों को छः प्रकार के दण्ड से भी मुक्त किया था। उनके अनुसार ब्राह्मणों को पीटा न जाय, उन्हें हथकड़ी बेड़ी न लगायी जाय, उन्हें धन दण्ड न दिया जाय, उन्हें ग्राम अथवा देश से न निकाला जाय, उनकी भर्त्सना न की जाय एवं उन्हें त्यागा न जाय।[361] आपस्तम्ब ने श्रोत्रिय को करों से मुक्त किया है।[362] कौटिल्य ने भी ब्रह्मदेय भूमि को, ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय को दान देने के सम्बन्ध में यह बताया कि वह भूमि उपजाऊ तथा कर मुक्त होनी चाहिए।[363] दान पाये गये धन के सम्बन्ध में अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मणों को अधिक छूट दी गयी।[364] भर्त्सना सम्बन्धी प्रसंगों में ब्राह्मणों के लिए न्यूनतम जुर्माने की व्यवस्था थी।[365] अवरूद्ध मार्ग में जाने के लिए ब्राह्मण को राजा से भी अधिक प्राथमिकता दी गयी है।[366] इसी प्रकार ब्रह्म हत्या को जघन्य पाप बताया गया है। सभी धर्मसूत्र विभिन्न प्रश्नों पर एक मत नहीं है। जैसे गौतम और बौधायन ने ब्राह्मण को कुसीद (महाजनी काम) की छूट दी है, यदि यह कार्य कृषि एवं वाणिज्य की भांति ब्राह्मण किसी सहायक के माध्यम से करे, किन्तु आपस्तम्ब में वार्धुषिक वृति (बढ़ती ब्याज लेना) के विरूद्ध प्रायश्चित का निर्देश है। उन्होंने कुसीदी ब्राह्मण को शूद्र कहा है।

मौर्ययुगीन परिस्थितियों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धर्मसूत्रों की वर्णव्यवस्था का स्पष्ट अनुमान होता है, जैसे चार वर्णों पर संगठित समाज-व्यवस्था, तद्नुसार

उनकी जीविका एवं कर्तव्य, ब्राह्मणों का समाज में समादर एवं पुरोहित के रूप में उनके नेतृत्व की भूमिका आदि। इससे स्पष्ट है कि बाद में पायी जाने वाली वर्ण-व्यवस्था की कठोरता मौर्यकाल में नही थी, किन्तु इसकी शुरूआत हो चुकी थी।[368] ब्राह्मणों की ब्रह्मदेय भूमि जो कर मुक्त थी, दान में प्राप्त होती थी। यह उनकी सम्पन्नता का कारण थी।

जैसा कि पहले चर्चा हो चुकी है कि धर्मसूत्रों में सामाजिक अनुक्रम में क्षत्रियों को द्वितीय स्थान दिया गया है और बौद्ध ग्रंथों में प्रथम। इस वर्ग[369] के अंतर्गत उन सभी राजपरिवारों और व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया है जो या तो स्वयं राजा थे या उनके परिवार से सम्बन्धित थे। कौटिल्य के अनुसार वर्णव्यवस्था की रक्षा करना राजा का कर्तव्य था। राज्य की अनवरत पुष्टि एवं राजशक्ति की अदम्य महत्ता अर्थशास्त्र से स्पष्ट है, इसमें क्षत्रिय की नेतृत्व मूलक भूमिका का अनुमान सम्भव है। यह भी दृष्टव्य है कि मौर्य शासक वैदिक परम्पराओं के प्रतिपक्षी धर्मो में अनुरक्त थे एवं वर्ण व्यवस्था या अन्य धर्मशास्त्रीय व्यवस्था की सम्पुष्टि में उन्होंने ब्राह्मण-श्रमण, निर्ग्रन्थ आदि को समादर देते हुए भी दास, मृतक आदि के प्रति सद्व्यवहार की नीति का पालन किया। अशोक के अभिलेख से यह स्पष्ट है। कौटिल्य ने यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की सेना का उल्लेख किया है, किन्तु इनमें सर्वोपरि उन्होंने क्षत्रिय सेना को ही स्वीकार की है।[370] क्षत्रिय वर्ग में सैनिक लोग भी सम्मिलित थे।[371] अतः युद्ध करना तथा प्रजाजन की रक्षा करना क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य बताया गया है।

वैश्यों का सामाजिक-धार्मिक स्थान ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के बाद था।[372] परन्तु इस काल में वैश्य वर्ण में से ही एक सम्पन्न समुदाय उभरने लगा था, जिसमें

पालि, ग्रथों के 'सेट्ठि', 'गहपति', 'कुटुम्बिक' तथा सम्पन्न व्यापारी 'सार्थवाह' सम्मिलित थे। आर्थिक सम्पन्नता के कारण इनका स्थान समाज में अन्य वैश्यों की अपेक्षा ऊपर उठने लगा था। गृह्यसूत्रों[373] में भी इस बात की चर्चा आई है कि गार्हपत्याग्नि की स्थापना के समय अग्नि उस वैश्य के घर से लाई जाय जो पशुधन से सम्पन्न हो।[374] वैश्यों में गहपतियों का स्थान महत्वपूर्ण था।[375] गहपतियों के इस समुदाय में सम्पन्न वैश्यों के अतिरिक्त सम्पन्न क्षत्रिय तथा ब्राह्मण भी सम्मिलित थे गहपतियों को राजदरबार में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था,[376] जो अन्य वैश्यों की अपेक्षा उनके उत्कर्ष का सूचक है। कुटुम्बिक से भी धनी परिवार के स्वामी का बोध होता है।[377] ये वाणिज्य-व्यापार,[378] अनाज का व्यवसाय[379] तथा कृषि कार्य करते थे।[380] ये धन उधार देने का कार्य भी करते थे।[381]

वैश्यों का सर्वाधिक सम्पन्न वर्ग सेट्ठियों का था।[382] नगर जीवन के विकास में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[383] राजगृह के एक सेट्ठि गहपति का उल्लेख मिलता है जिसने राजा तथा निगम के साथ बहुत उपकार किये थे।[384] अनाथ पिण्डिक नामक महासेट्ठि ने बौद्ध भिक्षुओं के आवासों के निमित्त प्रभूत धनराशि प्रदान की थी। सेट्ठियों को भी राजदरबार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।[385] महाजनक जातक में उन्हें आमात्य मण्डल तथा ब्राह्मणों के समकक्ष आसीन बताया गया है।[386] सांसारिक वैभव त्याग देने वाले सेट्ठियों के उल्लेख भी यदा-कदा प्राप्त होते हैं।[3] उन्हें स्थान-स्थान पर 'असीतिकोटिविभवों' (अस्सी करोड़ सम्पत्ति वाला) कहा गया है।[388] अतिशयोक्तिपूर्ण होने के बावजूद में विवरण उनकी सम्पन्न स्थिति का आभास अवश्य देते हैं। उनके पुत्र क्षत्रिय तथा ब्राह्मण कुमारों के साथ शिक्षा प्राप्त करते थे तथा आचार्यों को दक्षिणा में पर्याप्त धन दिया करते थे।[389] अर्थशास्त्र में वैश्यों के

लिए वार्ता अर्थात् कृषि, पशुपालन एव व्यापार का निर्देश है। श्रेणिमुखों के महत्वपूर्ण स्थान की पुष्टि उस उद्धरण से होती है जिसमें दुर्योधन गन्धर्वो से पराजित होने के कारण राजधानी लौटने से इनकार करता है क्योंकि हार के कारण वह श्रेणिमुखों को अपना मुँह दिखाने में असमर्थ पाता है।[390]

सामाजिक अनुक्रम में शूद्र वर्ण का स्थान अन्य तीनों वर्णो की अपेक्षा, हीन था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार शूद्रों को उपनयन, वेदाध्ययन तथा अग्न्याधान का अधिकार नही था।[391] आपस्तम्ब में शूद्रों की उपस्थिति में वेदपाठ निषिद्ध बताया गया है।[392] गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि शूद्र के लिए पुरोहित का कार्य करने वाले ब्राह्मण का अपकर्ष हो जाता था।[393] शूद्रों पर आरोपित विभिन्न निर्योग्यताएँ [394] इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा इस काल में तीन उच्च वर्णो, विशेषकर ब्राह्मणों तथा शूद्रों के मध्य का अन्तर और अधिक गहरा हो गया था।

तीन उच्च वर्णो की सेवा शूद्रों के जीवन यापन का साधन बतायी गयी है।[395] पहले पहल धर्मसूत्रों में इस विचार का उल्लेख मिलता है कि शूद्र द्वारा स्पर्श किया हुआ भोजन अपवित्र हो जाता है।[396] आपस्तम्ब ने कहा कि शूद्र का स्पर्श हो जाने पर ब्राह्मण को भोजन त्याग देना चाहिए।[397] बौधायन के अनुसार शूद्रापुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति में केवल एक भाग का अधिकार था जबकि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र क्रमशः चार, तीन, दो भागों के अधिकारी थे।[398] सम्पत्ति के संदर्भ में वसिष्ठ ने केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को अधिकार प्रदान किया, शूद्र को नही।[399] इस प्रकार की निर्योग्यताएँ सामाजिक अनुक्रम में अन्य तीन वर्णो की अपेक्षा शूद्रों के हीन स्थान की द्योतक हैं। यदि कहा भी जाये कि गंगा घाटी के निचले

भाग में नदों के रूप में कुछ शूद्रों का उत्कर्ष हो गया था तब भी, वर्ग के रूप में शूद्रों पर आरोपित निर्योग्यताओं में कोई कमी हुई, यह नही कहा जा सकता।

पाणिनि ने शूद्रों को दो कोटियों में बांटा है – निरवसित एवं अनिरवसित।[400] पतंजलि की टीका से स्पष्ट है कि लगभग 150 ई0पू0 तक शक, यवन, लोहकार, तक्षक आदि के साथ एक ही पात्र में भोजन करने से आर्य या उच्च शूद्र भोजन को अपवित्र नहीं करता था किन्तु चाण्डाल या मृताप जैसे शूद्र सहभोज की इस प्रक्रिया से बाहर थे, क्योंकि वे निरवसित कोटि में थे। ये नगरों तथा ग्रामों के बाहर रहते थे।[401]

शूद्र द्वारा अन्य वर्णों की परिचर्या के सिद्धान्त का निराकरण मज्झिम निकाय के मधुरसुत्त में है, जिसमें कहा गया है कि शूद्र या अन्य कोई यदि धन-धान्य, सुवर्ण आदि से युक्त है तो विभिन्न सेवाओं हेतु वह अन्य को लगा सकता है। इससे प्रकट है कि सामर्थ्य ही सेवा प्राप्त कराता था। बौद्ध व्यवस्था में वस्तुतः वैश्य एवं शूद्र की कोटिया धुँधली है। इनके स्थान पर जन्म कुल या कर्म पर आधारित निम्न या उत्कृष्ट जातियों का विवरण है।

धर्मसूत्रों की उक्त व्यवस्था भी पूर्णतः लागू प्रतीत नहीं होती है। बौद्ध-ग्रंथों में इसके विरूद्ध अनेक विवरण प्राप्त होते है। रोमिला थापर के अनुसार, वर्ण को स्तरों का ढाँचा मानने के बजाय, उन्हें वस्तुपरक, स्वतंत्र उर्ध्वोन्मुख समानांतरों का क्रम मानना अधिक समीचीन है। यह ऐसा क्रम था जिसमें प्रत्येक वर्ण का नियमन जनजाति एवं कर्मविषयक पहिचान के लक्षणों द्वारा संयत था। जातियाँ भी इसी स्तरीकरण में उपव्यवस्था के रूप में स्वीकृत हो गयी जैसे उदाहरण के लिए 'राजन्य'

जो सम्भवत: जनजाति मूलक थे। कालान्तर में क्षत्रियों में बदल गये। यह विकास में गतिशीलता की वस्तुस्थिति को प्रकट करता है।[402]

अर्थशास्त्र में शूद्रों के लिए भी कृषि, पशुपालन तथा व्यापार अनुमोदित है। शूद्रों के प्रति अर्थशास्त्र का उक्त दृष्टिकोण धर्मसूत्रों की व्याख्या से भिन्न है, जिनमें उन्हें द्विजातियों की सेवा का ही कार्य प्रदत्त था। कौटिल्य ही एकमात्र और प्रथम ब्राह्मण लेखक है जिनसे पता चलता है कि दासों को बड़े पैमाने पर कृषि कार्य में लगाया जाता था।[403] अधिकांश शूद्र पहले की ही तरह कृषि मजदूरों, दासों के रूप में काम करते रहे।

वैदिक काल के अंत तक आर्य एवं दास के पद अंतर्पपरिवर्तनीय थे जिससे उनकी सुरक्षित स्थिति का भान होता है। छठी शताब्दी ई0पू0 में दास-कर्मकारों के अनेक उल्लेख है जिससे समाज में उनकी निम्न स्थिति का आभास होता है। यह सेवा कार्य में रत समुदाय था। पालिग्रंथों से यह प्रकट है कि यह समुदाय तत्कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था का आधार था। उत्पादन के कार्यो में इसका सर्वाधिक योगदान था किन्तु इनके श्रम का लाभ उन्हें नही वरन् अन्य को मिलता था[411], जैसे गणराज्यों के कुलीन खत्रियों को तथा अन्यत्र ब्राह्मण-श्रमणों या वैश्यों या भू-स्वामियों को। नई परिस्थितियों में जब जनजातीय समतावादी आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तन परिवारमूलक अर्थव्यवस्था में हुआ तो इनकी स्थिति सेवा कार्यो में रत एक विशिष्ट-समुदाय के रूप में हो गयी।[412]

अब दासों का वर्ग अपेक्षाकृत बड़ा हो गया था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि अतिथि के अकस्मात आ जाने पर अपने को स्त्री या पुत्र को भूखा रखा

जा सकता है, किन्तु उस दास को नहीं, जो सेवा करता है।[413] बौद्ध ग्रंथों में स्त्री तथा पुरूष दोनों ही प्रकार के दास-दासियों का विवरण प्राप्त होता है। दास राजमहलों[414], नगर श्रेष्ठियों[415] के घरों में तथा ग्रामीण कुटुम्बों[416] में भी कार्य करते हुए प्रदर्शित है। पहले-पहल इस काल के ग्रंथों में दासों के प्रकारों का उल्लेख मिलता है। दासों के इन प्रकारों की सख्या भिन्न-भिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न मिलती है।[417] यहाँ केवल अत्यावश्यक उल्लेख करना ही समीचीन होगा। विनयपिटक में तीन प्रकार के दासों का उल्लेख हुआ है - क्रीतदास, युद्धदास तथा स्वामी के गृह में उत्पन्न दास।[418] विदुरपण्डित जातक में चार प्रकार के दासों का उल्लेख मिलता है, जन्मदास, क्रीतदास, स्वेच्छा से बना हुआ दास तथा भय से बना हुआ दास। किसी आर्थिक आवश्यकता के कारण,[419] जुए में हार जाने के कारण,[420] अथवा कर्ज न दे पाने के कारण।[421] लोग जबरदस्ती भी दास बना लिये जाते थे। ऐसा उल्लेख भी मिलता है जब मृत्युदण्ड दासत्व में बदल दिया जाता था।[422]

कौटिल्य ने कई प्रकार के दासों का वर्णन किया है यथा- ध्वजाहृत (युद्धबंदी), आत्म-विक्रयी, उदरदास (भोजन के लिए बना हुआ दास), आहितक (ऋण के कारण दासत्व को प्राप्त) तथा दण्डप्रणीत (राजदण्ड के कारण दासत्व को प्राप्त)[423] कौटिल्य ने दासों की संख्या को कम करने के लिए अनेक वैधानिक उपायों का निर्देश दिया है तथा यह निर्दिष्ट किया है कि आर्य शूद्र को दास नहीं बनाया जा सकता।[424] कौटिल्य ने आर्यो के चार वर्णो के स्वतंत्र लोगों को दास बनाने का उपक्रम अस्वीकार किया है, एवं इसके दोषी पर जुर्माने की व्यवस्था की है। उनके अनुसार यदि विपन्नतावश कोई आर्य दास के रूप में परिवर्तित हो गया हो तो वादे की रकम देकर वह पुनः आर्य बन सकता था। कौटिल्य ने यह भी निर्देश दिया है

कि परिवार में गृहपति एवं घर में रहने वाली दासी से यदि कोई संतान हो तो दासी एव संतान दोनों ही दासत्व से मुक्त हो जाते थे।[425]

पूर्ववर्ती काल के समान इस समय भी दास-दासी उपहार अथवा दान में दिये जाते थे।[426] घरेलू कार्यों के अतिरिक्त दास कृषि-कर्म में नियुक्त किये जाने लगे थे।[427] उत्पादन कार्यों में इनके नियोजन के प्रमाण वैदिक काल के अंतिम चरण से ही प्राप्त होने लगते हैं।[428] अतः दासत्व विशिष्ट परिस्थितियों से उत्पन्न होता था एवं निश्चित विधियों से उसका परिहर भी संभव था। इस प्रकार के दासों को आहितक कहा गया है।[429] ये अधिग्रहण किये हुए थे जो अदायगी के बाद मुक्त कर दिये जाते थे।

विभिन्न व्यावसायिक एवं जनजातीय समुदायों को एक सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत रखने के प्रयास के परिणाम स्वरूप भी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया को गति मिली। इसका सर्वप्रथम प्रयास धर्मसूत्रों में प्राप्त होता है। धर्मसूत्रों में विभिन्न व्यावसायिक एव जनजातीय समुदायों को वर्णसंकर या मिश्रित जातियों के रूप में अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न बताया गया है। इनका उद्भव श्रम विभाजन की तकनीकी विशिष्टीकरण, विजय एवं जनजातियों के उत्संस्करण के फलस्वरूप सम्भव हुआ होगा। मौर्यकाल में राजनीतिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने भी इनके उद्भव और विकास में सहयोग दिया होगा।[430]

वैदिक युग के बाद धर्मसूत्रों में गौतम आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ ने सवर्ण विवाह को आदर्श माना है किन्तु उनमें अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों की चर्चा भी है। अनुलोम विवाह वे थे जिनमें वर उच्च वर्ण का हो किन्तु कन्या उससे नीचे के

किसी वर्ण की हो। प्रतिलोम विवाह में स्थिति विपरीत थी, अर्थात् जिसमें कन्या उच्च वर्ण की हो तथा वर निम्न वर्ण का हो। यह विवाह प्रतिलोम प्रकार का कहा गया। यद्यपि वैदिक युग के दृष्टांतों में दोनों ही प्रकार के विवाहों के उदाहरण है, किन्तु इन विवाहों की श्रेणी, नाम एवं अंतर आदि का प्रादुर्भाव धर्मसूत्रों में ही मिलता है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार अनुलोम क्रम में उत्पन्न वर्णसंकर जातियाँ अम्बष्ठ, उग्र, निषाद, दौष्यन्त तथा पार्शव थी।[431] बौधायन के अनुसार अम्बष्ठ, निषाद उग्र तथा रथकार थी।[432] वशिष्ठ ने अनुलोम क्रम में अम्बष्ठ, उग्र निषाद तथा पारशव का उल्लेख किया है।[433] अनुलोम क्रम में उत्पन्न ये जातियाँ भूर्धावसिक्त, भृज्यकष्टक, माहिष्य, पारशव यवन तथा करण थी।[434] इस तालिका में यवन विदेशी थे।

प्रतिलोम क्रम में गौतम ने सूत, मागध, आयोगव, वैदेहक, चाण्डाल तथा क्षतृ का उल्लेख किया है।[435] बौधायन ने आयोगव, मागध, वेण, पुल्कस, कुक्कुट, सूत, वैदेहक तथा चाण्डाल का उल्लेख किया है।[436] मिश्रित जातियों की विस्तृत तालिका महाभारत के अनुशासन पर्व में मिलती है। परन्तु यह बाद का माना जाता है और इसे दूसरे चरण में उल्लिखित करने का प्रयास किया जायेगा। अर्थशास्त्र में आयोगव, अम्बष्ठ, क्षत्रा, चाण्डाल, मागध, वैदेहक, सूत, कुक्कुट, उग्र, निषाद, पुल्कस, वैण, कुशीलव तथा श्वपाक का उल्लेख हुआ है।[437]

वर्णसंकर या मिश्रित जातियों में से पांच जातियों को बौद्धग्रंथों में विशेष घृणा की दृष्टि से देखा गया है। इनके नाम चाण्डाल, पुक्कुस, निषाद, वेण तथा रथकार बताए गये है।

इनमें सर्वाधिक हीन स्थिति चाण्डालों की थी।[438] इनका उद्भव जनजातीय बताया गया है।[439] आर्येतर लोगों के समूहों का आर्य समाज में स्थान इस आधार पर उठा और गिरा कि वे शक्ति, सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा में किस सीमा तक आर्य अधिपतियों के समकक्ष खड़े होने में समर्थ हुए अथवा आर्य तत्वों को अपनाने में कहाँ तक सफल हुए।

गौतम धर्मसूत्र में चाण्डालों की उत्पत्ति शूद्र पुरूष तथा ब्राह्मण स्त्री से बताई गयी है।[440] जो प्रतिलोम विवाह का निकृष्टतम् रूप था। यह धारणा केवल सैद्धान्तिक प्रतीत होती है जिसके माध्यम से उन्हें सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया गया। वास्तविकता उनके देशी समुदाय से सम्बन्धित होने की ही अधिक है। चाण्डालों की अस्पष्ट भाषा[441] तथा द्रविड़, कलिंग, शबर, गौंड तथा गान्धार के साथ चाण्डालों का उल्लेख[442] उनके जनजातीय उद्भव को ही प्रमाणित करता है। धीरे-धीरे चाण्डाल अश्पृष्य[443] समझे जाने लगे थे जिनका उल्लेख अगले चरण में किया जायेगा। उनके व्यवसाय अथवा जीविका के साधन के विषय में जातक उन्हें छवदाहक[444], जिण्णपति-संखारक[445], तथा कभी-कभी ऐन्द्रजालिक[446] भी बताते है। कुछ ग्रंथों में उनका कार्य अपराधियों को क्रूर दण्ड देना[447] बताया गया है, जिसमें प्राणदण्ड भी[448] सम्मिमिलत था।

सम्भवतः चाण्डालों की भांति पुक्कुस भी आर्येतर के ही एक वर्ण थे।[449] इनकी गणना चाण्डालों के ही समान घृणित जातियों[450] में हुई है परन्तु सम्भवतः ये अपेक्षाकृत कम घृणित थे क्योंकि कभी-कभी शिकार के अतिरिक्त मंदिरों तथा राजमहलों की सफाई कर जीवन-निर्वाह करते हुए देखा जा सकता है[451] पालिग्रंथों में उल्लिखित 'पुल्कुस' ब्राह्मणग्रंथों के पुल्कस अथवा पुक्कस ही है।

बौधायन ने इन्हें निषाद पुरूष तथा शूद्रा स्त्री से उत्पन्न बताया है।[452] वसिष्ठ ने वैश्य पुरूष तथा क्षत्रिय स्त्री की सन्तान[453] तथा अर्थशास्त्र में इन्हें निषाद पुरूष तथा उग्र स्त्री की सन्तान बताया गया है।[454] इस विषय में फिक का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। उनके अनुसार यह एक प्रजातीय व्यावसायिक वर्ग था जो शिकार तथा अन्य घृणित कार्यो द्वारा जीवन-यापन करता था।[455] पालिग्रंथों में इनका कार्य मुरझाये हुए फूलों को बटोरना था।[456]

चाण्डाल तथा पुक्कुस की भाँति 'निषाद' भी जनजातीय ही बताये गये है।[457] चूँकि शिकार तथा मछली पकड़ने का व्यवसाय मानव के पिछड़ेपन का प्रतीक है[458] तथा कृषि, पशुपालन एवं अन्य उद्योग की अपेक्षा इन कार्यो द्वारा अधिक धनोपार्जन भी सम्भव नहीं था इसलिए इनकी स्थिति भी हीन हो गयी।[459] पालिग्रंथों एव संस्कृत ग्रंथों में हम न केवल निषाद ग्रामों[460] का ही उल्लेख पाते है अपितु राज्यों, राजाओं तथा सेनाओं का भी विवरण प्राप्त होता है।[461] पाणिनि के गणपाठ में एक निषाद गोत्र का उल्लेख है।[462] इस पर कोसम्बी की धारणा है कि निषाद गोत्र का अस्तित्व तब तक सम्भव नहीं, जब तक कुछ देशज पुरोहित आर्य-समाज में ग्रहण न किये गये हों।[463] सम्भवतः कुछ निषादों ने पुरोहित वर्ग में स्थान पा लिया था।[464] यह बहुत स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल की अपेक्षा इस समय समाज में निषादों की स्थिति हीन हो गयी थी।[465] ब्राह्मण ग्रंथ इन्हें ब्राह्मण पिता तथा शूद्रा माता[466] की संतान ,अथवा ब्राह्मण पिता वैश्या माता[467] की संतान बताते हैं। समीचीन यही है कि ये आर्येत्तर जनों से सम्बन्धित थे।

फिक तथा ए0एन0 बोस ने 'वेण' को व्यावसायिक जाति अथवा आर्येतरों का वह वर्ग माना है जो मछली पकड़ने वाले वर्गो तथा शिकारियों की अपेक्षा

सुसंस्कृत था।[468] विष्णु धर्मसूत्र में इन्हें चर्मकार, निषाद तथा पुक्कुस के साथ रखा गया है।[469] ललितविस्तर में इसका उल्लेख चाण्डाल पुक्कुस तथा रथकार आदि 'हीनकुलों' के सम्बन्ध में हुआ है जिनमें बोधिसत्व ने जन्म नहीं लिया था।[470]

बौधायन ने वेण को क्षत्रिय माता तथा वैदेहक पिता की सन्तान बताया है।[471] विष्णु धर्मसूत्र इसे प्रतिलोम जाति बताते हुए शूद्र पुरूष तथ क्षत्रिय माता की सन्तान बताता है।[472] अर्थशास्त्र[473] में 'वेण' अम्बष्ठ तथा वैदेहक स्त्री की संतान बताये गये हैं। बांस की डलिया एवं बांसुरी बनाना इनका व्यवसाय बताया गया है।[474]

बौद्ध ग्रंथों में 'रथकारों' का उल्लेख चाण्डाल, पुक्कुस, निषाद, वेण आदि घृणित जातियों के साथ किया गया है। परन्तु ब्राह्मण ग्रंथों में इनका स्थान अपेक्षाकृत अधिक सम्मानपूर्ण है। प्रारम्भिक सूत्रों में उन्हें उपनयन का 'अधिकार' भी प्राप्त था परन्तु बाद के सूत्रों में उपनयन के संदर्भ में इनका नाम नही मिलता है।[475] पूर्व वैदिक काल में रथ बनाने की कला का महत्व बहुत अधिक था। उत्तर वैदिक काल में भी रथकारों के महत्वपूर्ण स्थान को अस्वीकार नही किया जा सकता।[476] रथकार प्रारम्भ से ही द्विज थे तथा आर्य समूह से सम्बन्धित थे, यह श्रौत सूत्रों तथा गृह्यसूत्रों से स्पष्ट है।[477] तीन-तीन उच्च वर्णो के समान ही रथकारों को श्रौत यज्ञों के सम्पादन का अधिकार था।[478] धर्मसूत्रों ने रथकारों को वैश्य पिता तथा शूद्रा माता की सन्तान बताकर मिश्रित जातियों के मध्य स्थान दिया है।[479] कौटिल्य ने भी इन्हें मिश्रित जातियों के मध्य स्थान दिया है।[480] सम्भवत: धर्मसूत्रों के समय तक आते-आते इनके उपनयन-संस्कार का अधिकार समाप्त हो गया। शारीरिक श्रम के प्रति ब्राह्मणों की बढ़ती हुई अरूचि तथा दस्तकारों के शूद्रों के समकक्ष हो जाने के कारण रथकारों का अपकर्ष हुआ होगा।[481] जातक में आयी पंक्ति के आधार पर यह

अनुमान किया गया है कि रथकार चमड़े का कार्य भी करने लगे थे।[482] निष्कर्ष रूप में केवल इतना कहा जा सकता है कि रथकार एक व्यावसायिक जाति के थे जिनका नामकरण व्यवसाय विशेष के आधार पर हुआ। रथ विशेष रूप से युद्ध में प्रयुक्त होते थे और बौद्धों का धार्मिक दृष्टिकोण युद्ध और हिंसा के विरूद्ध था। रथकारों के प्रति बौद्धों के घृणित दृष्टिकोण का एक कारण सम्भवतः रथों का निर्माण भी रहा होगा।[483]

अतः नागरिक जीवन के विकास ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के महत्व को और अधिक बढ़ा दिया, फलस्वरूप सम्पत्ति के अर्जन में समर्थ तथा समृद्ध लोगों ने सम्पत्ति के आधार पर विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। इससे एक ओर अधिकारिक वर्ग की रूपरेखा स्पष्ट होने लगी तो दूसरी ओर निर्धन हीन तथा अनाधिकारिक वर्गों का रूप स्पष्ट हो उठा। अधिकारिक तथा शासक वर्ग के अंतर्गत शासन और युद्ध से सम्बन्धित लोग, पुरोहित तथा सम्पन्न व्यापारी एवं कुछ सम्पन्न शूद्र[485] रहे होंगे तथा हीन अनाधिकारिक वर्ग में निर्धन तथा अधिकारहीन शूद्र दास तथा अन्य हीन व्यवसायों द्वारा जीवन-यापन करने वाले सम्मिलित थे। इस वर्ग में कुछ अंश इन ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का भी था जो आर्थिक विपन्नता के कारण धर्मविमुख हुए होंगे तथा जीविकायापन में असमर्थ हो हीन व्यवसायों द्वारा जीवन-यापन कर रहे थे।

द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 तक

विद्या के आधार पर ब्राह्मण, बल के आधार पर क्षत्रिय, धन के आधार पर वैश्य तथा आयु के आधार पर शूद्र की श्रेष्ठता के निर्धारण की बात मनु ने कही है।[486] लेकिन फिर भी समृद्ध बनने की महत्वाकांक्षा ने तथा विभिन्नता के कारण

अपने वर्ण के लिए निर्धारित कार्य द्वारा जीवन-यापन में अक्षमता ने कुछ लोगों को अन्य व्यवसाय तथा कार्य करने के लिए बाध्य किया होगा जिससे कुछ मिश्रित वर्ण भी उत्पन्न होने लगे होंगे, जिसका संकेत अंगविज्जा नामक कुषाणकालीन ग्रंथ में प्राप्त होता है।[487] मनु द्वारा वर्ण-धर्म की रक्षा के लिए दण्ड पर दिया गया विशेष बल भी इसी ओर इंगित करता है।[488] इसके अतिरिक्त दक्कन के प्रदेश में भी वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी के वर्ष 19 के नासिक गुहालेख[489] में सातवाहन शासक के लिए 'एक ब्राह्मण', 'क्षत्रियमानमर्दनकर्ता तथा 'चातुवर्णसंकर' को रोकने वाला आदि उपाधियों का उल्लेख है।

बौद्ध ग्रंथों का दृष्टिकोण यद्यपि ब्राह्मणों के पक्ष में नहीं था, परन्तु जनसामान्य की दृष्टि में वे सम्मान और आदर के पात्र थे। महाभारत तथा मनु में ब्राह्मणों को हव्य तथा कव्य का एक मात्र अधिकारी[490], सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी[491], अभिजन होने के कारण धन ग्रहण करने का अधिकारी[492], क्रुद्ध होने पर सेना तथा वाहन सहित राजा का भी सर्वनाश करने में सक्षम,[493] देवताओं को भी सदैव (स्थानच्युत) करने में समर्थ[494], देवों का भी देव[495] तथा मानवों में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[495]

कुछ ऐसे प्रसंग भी है जहाँ अन्य वर्णो के व्यक्तियों के समान ब्राह्मण भी अनुचित कार्य करने पर पाप का भागी होता था। असत्य गवाही देने पर ब्राह्मण को राज्य से निकाल देने की।[497] गवाही के संदर्भ में निन्दित ब्राह्मणों से शूद्रवत प्रश्न करने की।[498] व्यवस्था मनु ने निर्धारित की। इसके पहले धर्मसूत्रों के काल में ब्राह्मण धन-दण्ड तथा राज्य निष्कासन के दण्ड से मुक्त थे।[499] कुछ ऐसे ब्राह्मण भी थे

जिनका अनुष्ठानिक स्तर उपनयन आदि के विधि पूर्वक सम्पादन न करने से गिर जाता था। इन्हें 'व्रात्य' कहा गया है।[500]

याज्ञवल्क्य ने भी कहा कि अपराध करने पर अन्य वर्ग के व्यक्तियों के समान ब्राह्मण भी दण्ड का पात्र था।[501] लेकिन राज्य-निर्वासन तथा दण्ड की जिस व्यवस्था का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, वह याज्ञवल्क्य ने उन्हें ब्राह्मणों के लिए निर्मित की होगी जो अपराधी रहे होंगे। यह दृष्टिकोण अपराधों को प्रश्रय न देने की व्यावहारिकता को दृष्टि में रखकर अपनाया गया होगा। अत: ये विधान नैतिकता की क्रमशः बलवती होती हुई अवधारणा की ओर संकेत करते हैं।

ब्रह्मा की बाहु से 'क्षत्रियो' की उत्पत्ति की बात मनु ने भी दोहरायी।[502] क्षत्रियों के कर्म के विषय में पूर्व-सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करते हुए कहा गया कि प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना तथा विषयों में आसक्ति न रखना क्षत्रियों के कर्म है।[503] विशेषाधिकृत वर्ग के रूप में अधिकांश स्थलों पर इन्हें ब्राह्मणों के साथ उल्लिखित किया गया है, पर कुछ स्थलों पर ये वैश्य तथा शूद्र के साथ भी उल्लिखित है।[504] अपराधी क्षत्रिय प्राणदण्ड का भागी होता था।[505]

मनु ने भी 'वैश्यो' के समाज में तृतीय स्थान की पुष्टि की इनके कर्मो में पशुपालन, यज्ञ करना, वेदाध्ययन, व्यापार, ब्याज तथा कृषि का परिगणन किया गया है।[506] राजा को यह विशेष रूप से आदेश दिया गया है कि वह वैश्यों को अपने कर्म में लगाये रहे।[507] मनु ने वैश्य के लिए यह आवश्यक समझा कि यह मणि, मुक्ता, प्रवाल, लोहा, वस्त्र, सुगन्धित वस्तुओं तथा (लवणादि) रसों का न्यूनाधिक भाव जानता रहे।[508] यह धर्म सम्भवत: व्यापारी वर्ग को ध्यान में रखकर निर्धारित

किया गया होगा। इसके अतिरिक्त कृषि तथा पशुओं से सम्बन्धित सभी वस्तुओं के क्रय-विक्रय के सभी विषयों का जानना आवश्यक था।[509] अन्य वर्गों की भांति वैश्य भी अपराध करने पर दण्ड का भागी होता था। चोरी करने पर चोरी का सोलह गुना[510] धन दण्ड देना पड़ता था। 'द्विज' होने के कारण संस्कार सम्बन्धी विशेष नियम वैश्य के लिए भी बनाये गये थे । उनके लिए उपनयन की आयु मनु ने आठ वर्ष निर्धारित की।[511]

विकसित शिल्प, व्यापार और व्यवसाय के विकास का प्रभाव वैश्यों के सामाजिक स्तर पर विशेष रूप से पड़ा। उनके विभिन्न व्यावसायिक और व्यापारिक समुदायों का श्रेणियों के रूप में संघटन यद्यपि पूर्ववर्ती काल में ही आरम्भ हो चुका था परन्तु वह इतना विकसित नहीं हुआ था। श्रेणियों के विकसित स्वरूप का आभास उनकी बढ़ी हुई संख्या से प्राप्त होता है जिनका उल्लेख लूडर्स लिस्ट में हुआ है। कुषाण काल में उन व्यापारियों की श्रेणियों का महत्व विशेष हो गया था, जिनके नेता सार्थवाह होते थे, इसका कारण भारत से होकर चीन तथा रोम से होने वाले रेशम के व्यापार की वृद्धि थी।[512]

सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ई0 का काल शूद्रों के उन्नयन का काल था।[513] स्वयं मनुस्मृति में ही ऐसे प्रसंग दुर्लभ नहीं है जिनसे शूद्रों के पहले की अपेक्षा उत्कर्ष के संकेत प्राप्त होते है। सर्वप्रथम इस काल में यह व्यवस्था मिलती है कि द्विजों की सेवा से जीवन निर्वाह न होने पर शूद्र विविध शिल्पों द्वारा जीवन-यापन कर सकता था।[514] याज्ञवल्क्य ने शूद्र के लिए आपत्तिकाल में विविध शिल्पों द्वारा जीवन-यापन की व्यवस्था निर्धारित की है।[515] फेरी लगाने वाले शूद्र सौदागरों का विवरण भी प्राप्त होता है।[516]

कृषि कार्यों में शूद्रों के नियोजन से शूद्रों की सामाजार्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ। इसके अतिरिक्त उद्योग एवं व्यापार के विकास ने भी शूद्रों के उन्नयन में विशेष भूमिका निभाई। शूद्र आर्थिकों के उल्लेख इस काल के ग्रंथों में प्राप्त होने लगते है।[517] उपज के आधे भाग के अधिकारी होने के कारण उनके लिए अर्थसंग्रह अब कोई बड़ी बात नहीं थी। उद्योग तथा व्यापार के विकास के कारण वैश्य तथा शूद्रों के मध्य अन्तर समाप्त प्राय होने लगा था।[518] धन संचय करने वाले शूद्रों के प्रति मनु का विरोधी दृष्टिकोण मनुस्मृति में दिखाई पड़ता है।[519] दान देने में समर्थ शूद्र श्रेणियों के उल्लेख पुरातात्विक अवशेषों में उपलब्ध है। इनमें चर्मकार, गान्धिक, रंगरेज, मछली पकड़ने वाले आदि उल्लेखनीय है जो अभिलेखों में दान देने वाली के रूप में उल्लिखित है।[520] यदि शान्ति पर्व के इस कथन पर विश्वास किया जाय कि चारों वर्ण वेद सुन सकते है तो यह शूद्रों के लिए एक विशेष अधिकार था।[521] शूद्रों को भी कुछ धार्मिक अधिकार प्राप्त थे यह उनक लिए प्रयोग किये गये धर्मप्रवक्ता[522] शूद्र से स्पष्ट है। सर्वप्रथम मनुस्मृति तथा महाभारत में इस बात का उल्लेख मिलता है कि ज्ञान शूद्र से भी ग्रहण किया जा सकता है।[523] इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस काल में शूद्र उन्नत अवस्था को प्राप्त कर रहे थे।

न केवल शूद्र बल्कि दासों के लिए भी यह काल महत्वपूर्ण परिवर्तन का आभास देता है। दास प्रथा की दुर्बलता का संकेत दासों की मुक्ति सम्बन्धी अवस्थाओं से प्राप्त होता है।[524] जिसके जितने प्रमाण इस काल में प्राप्त होते हैं उतने इससे पहले के काल में नहीं मिलते। कौटिलीय अर्थशास्त्र में जो दासों की मुक्ति की व्यवस्था मिलती है वह आर्य दासों के संदर्भ में है, परन्तु प्रस्तुत काल में मिलने

वाले विवरणों में इस प्रकार की कोई बात नही कही गयी है। दासों को मुक्त करने के उपाय सर्वप्रथम नारद ने सुझाया है।[525]

दासों के बारे में विस्तृत विवरण इस काल में प्राप्त होता है। मनु ने सात प्रकार के दासों का उल्लेख किया है, और नारद ने पन्द्रह प्रकारों का। मनु ने युद्ध में प्राप्त दास, भक्त दास, दासी का पुत्र, खरीदा हुआ दास दूसरे का दिया हुआ दास आनुवशिक तथा दण्ड दास का उल्लेख किया है।[526] नारद द्वारा उल्लिखित 15 प्रकारों में मनु द्वारा उल्लिखित सात प्रकार भी सम्मिलित है।[527]

इस काल में दासों के प्रकारों की बढ़ी हुई संख्या के कारण हमें यह अनुमान नही लगाना चाहिए कि दासों की संख्या में वृद्धि हो गयी थी बल्कि हमारा विचार यह है कि इस काल में ही उन पर समुचित ध्यान दिया गया होगा, क्योंकि उन ग्रंथों में दासों की मुक्ति की भी व्यवस्था प्राप्त होती है। याज्ञवल्क्य के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा के बिना दास नहीं बनाया जा सकता था।[528] यह उल्लेख दुर्बल होती हुई दास-प्रथा की ओर संकेत करता है। मनु ने दासी पुत्र को सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया।[529] याज्ञवल्क्य ने दासी के साथ बलात्कार करने वालों के लिए अर्थदण्ड तथा अन्य दण्डों की व्यवस्था निर्मित की।[530]

मनुस्मृति में घरेलू कमकरों के वेतन पर एक श्लोक मिलता है,[531] परन्तु याज्ञवल्क्य ने इस विषय में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि भृत्य ठहराये बिना भृत्य से व्यापार, पशुपालन तथा खेती का काम कराया जाये, तो राजा का यह कर्तव्य था कि वह भृत्य को इन कार्यो से होने वाले लाभ का दसवाँ अंश काम करने वाले को दिलाये।[532] इस उल्लेख से यह ज्ञात होता है

कि इस काल के अंतिम चरण में उत्पादन कार्यों में भृत्यों के नियोजन की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी।

लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से वर्णसंकर या मिश्रित जातियों के कुछ नवीन नाम भी मिलने लगते है, जिससे प्रतीत होता है कि इनकी संख्या में वृद्धि हो रही थी। मनु ने अम्बष्ठ, निषाद, सूत, उग्र, विदेह, मागध आदि 57 जातियों का उल्लेख किया है। जिसमें इन पूर्ववर्ती जातियों के अतिरिक्त कुछ नई जातियों के भी नाम मिलते है - जिसमें आवृत्त[533], भुक्कस[534], सैरन्ध्र[535], मैत्रेयक[536], भार्गव[537], कैवर्त[538], कारावर[539], मैद[540], पाण्डुसोपाक[541], अहिंडक[542] इनमें से कुछ नाम महाभारत में भी मिलते हैं। कुछ और नई जातियों के नाम जो कि महाभारत तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में प्राप्त होते है इस प्रकार है - मैरेयक[543], मदृगुर[544], मद्रनाथ[545], छुद्र[546], बंदी[547], माहिष्य[548], करण[549], मूर्धावसिक्त[550], छत्ता तथा मौद्गल्य।[551] इसके अतिरिक्त पुरानी मिश्रित जातियों आयोगव, निषाद, चाण्डाल, वेण, मागध, उग्र, पारशव, सूत कुक्कट, अन्त्यासायिक तथा श्वपाक आदि के नाम भी मिलते हैं।

इस प्रकार द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 तक मिश्रित जातियों की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी थी। इस काल में भी अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों के माध्यम से रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था के साथ इनका तालमेल बैठाने का प्रयास किया गया।

वर्ण-व्यवस्था की विभक्तियों में विदेशियों का सम्मिलन भी इस काल के सामाजिक रूपान्तरण का एक कारण रहा होगा। भारत में अन्य देशों के प्रवासियों का उल्लेख पर्याप्त प्राचीन है जैसे पाणिनि की अष्टाध्यायी में यवनों का उल्लेख है।[552]

छठी शताब्दी ई0पू0 में गांधार एवं कम्बोज जनपद में इनके अनेक समुदाय विद्यमान थे। तदुपरान्त यूनानी, शक पहलव, कुषाण आदि का भारत में आगमन होता रहा। अन्ततोगत्वा उनका भारतीय परम्परा में विलय हो गया। मिलिन्द नामक यवन बौद्ध हुआ। कुषाण राजा बौद्ध थे, या शैव अथवा भागवत हुए। शक क्षत्रपों का पश्चिमी भारत में बौद्ध धर्म से निकट सम्बन्ध स्पष्ट होता है। सामाजिक व्यवस्था में इन्हें स्वीकार करने का विवरण चट्टोपाध्याय ने प्रस्तुत किया है।[553]

पतंजलि के महाभाष्य में उन्हें आर्य समुदाय से बाहर शूद्र के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु मनु ने उन्हें 'पतित क्षत्रिय' कहा है।[554] धार्मिक सस्कारों का पालन न करने से एवं ब्राह्मणों से विमुख होने के कारण में 'वृषल' हुए, ऐसा मनुस्मृति में कथन है। अंत में धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन से, उपनयन द्वारा एवं ब्राह्मण अतिक्रमण के दोष से मुक्ति द्वारा वे क्षत्रिय वर्ण में मान्य हुए। मिलिन्दपन्हों में मिलिन्द नामक यवनराज को क्षत्रिय कुल में उत्पन्न माना गया है। शक शासक रूद्रदामन के लिए भी क्षत्रिय पद सम्भवतः स्वीकृत हो गया था। गौतमी पुत्र सातकर्णि का दावा है कि उसने क्षत्रियों का मान-मर्दन किया। शक एवं ब्राह्मणों के मधुर संबंध होने का अनुमान उषवदात द्वारा ब्राह्मणों को दिये गये दान से सिद्ध होता है।[555]

इस काल के दौरान अस्पृश्यता एक नई चीज उभर कर सामने आती है। वैदिक व्यवस्था में अस्पृश्यता अज्ञात थी। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में भी अस्पृश्यता का भाव अज्ञात है। इस साहित्य में चाण्डाल, पुक्कुस, वेण, रट्ठकार, निषाद नामक 'नीच कुल' या 'हीन जाति' का उल्लेख है किन्तु अस्पृश्यता का कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन कालान्तर में कुछ विशिष्ट जनजातियों पर खान-पान तथा स्पर्श के निषेध द्वारा सामाजिक व्यवस्था में उन्हें अस्पृश्यों का दर्जा दे दिया गया। इन अस्पृश्यों में

पहले केवल चाण्डाल एवं मृतपा का उल्लेख मिलता है किन्तु कालान्तर में चर्मकार, रजक एवं अन्य को भी इस कोटि में शामिल कर लिया गया।

मनु ने निषाद आयोगव, मेद, आन्ध्र, मद्‌गु, क्षतृ, पुक्कुस, घिण्वण तथा वण के कार्यो का विवरण देते समय इस बात का उल्लेख किया है कि वे ग्राम से बाहर, वृक्षों की छाया में, पर्वत पर अथवा श्मशान में रहते थे।[556] चाण्डाल तथा श्वपाक निश्चित रूप से अस्पृश्य थे तथा ग्राम के बाहर रहते थे।[557] उनकी एकमात्र सम्पत्ति कुत्ते तथा गधे बताये गये है। मनु के अनुसार वे टूटे-फूटे बर्तनों में भोजन करते, मुर्दे का कफन उनका वस्त्र होता था तथा वे लोहे के आभूषण पहन कर भ्रमण करते थे। रात्रि में उनका नगर में प्रवेश निषिद्ध था क्योंकि वे विशेष पहचान को धारण करते थे। अन्त्यज[558] तथा बाह्य[559] शब्दों का प्रयोग सम्भवतः अस्पृश्य जातियों के लिए ही किया गया होगा।

अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यता का चलन ब्राह्मणों द्वारा गोमांस खाने वालों एवं ब्राह्मणीय परम्परा से अलग रहने वालों के प्रति सुनियोजित अनुदार नीति का परिणाम था। किन्तु विवेकानन्द झा के विशेष अध्ययन से इस मत की पुष्टि नहीं होती। यह मत कि अस्पृश्यता का चलन आर्यो को उनके पूर्ववर्ती द्रविड़ों से विरासत में मिला यह मत भी झा ने अस्वीकार कर दिया है। हेमेनडार्फ नामक समाजशास्त्री ने अस्पृश्यता को नगरीय जीवन की देन माना है जो कालान्तर में गाँवों में भी फैल गयी। लेकिन अंततः यही प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता को बढ़ावा देने में सांस्कृतिक हीनता, घृणित व्यवसाय आदि सभी तत्वों का योगदान रहा होगा।

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक रूपान्तरण में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैधानिक सभी घटकों का योगदान था।

1. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, यू0एन0 राय द्वारा लिखित 'प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन' की भूमिका (प्रथम संस्करण) में।

2. अंगुत्तर निकाय, 1, 213.

3. वही, 4, 252.

4. सुरक्षा के कृत्रिम साधनों में परिखा, प्राकार तथा अरण्य उल्लेखनीय हैं। अर्थशास्त (पौली) खण्ड 1, पृ0 39; महाभारत, आदि पर्व 199, 29-39, अष्टाध्यायी, 3, 1, 17.

   अर्थशास्त्र, पृ0 52 (शास्त्री); हरिवंश, हरिवंशपर्व, अध्याय 54. पंक्ति 116. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ0 143. जातक, 1, 504. अय्यर, टाउन प्लानिंग इन ऐंश्येण्ट दकन, पृ0 25.

5. यू0एन0 राय, 'प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन', पृ0 44.

6. कुटिलिकायाम हरित आंगारान, 4, 1, 42.

7. आर0एस0 शर्मा, 'प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि0वि0.

8. दृ0, जी0एस0पी0 मिश्र (1983), पृ0 183-190.

9. वही, पृ0 192-193.

10. वही, पृ0 188.

11. बी0एस0 अग्रवाल (अनु0) (1955), पृ0 124.

12. द्र0, हिमांशु पी0 राय (1986), पृ0 97.

13. कौटिल्य, 1, 3, 9, 10, 7.

14. मनु0, 9, 44.

15. दे0 आर0एस0 शर्मा (1966), लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी एण्ड इकोनॉमी, बम्बई, पृ0 62.

16. मैक्रिंडल मेगास्थनीज, पृ0 31.

17. वही, पृ0 39 – लेकिन भारतीय साक्ष्य से ऐसा नहीं लगता कि किसानों को राजकीय सेवा से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया था।

18. महाभारत, सभापर्व, 5, 77.

19. मैक्रिंडल, एंशियेंट इण्डिया, पृ0 30.

20. मनुस्मृति 8, 248, 9, 279; 9, 281.

21. इण्डियन आर्कियालॉजी, ए रिपोर्ट, पृ0 14, 1954–55; 7, 1954–55; 19, 1955–56; 16, 1954–55; संकालिया, रिपोर्ट ऑन दि इक्स्कैवेशन्स एट नासिक एंड जोरवे, 1950–51; डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्सन्स वियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन 1, 119; 2, 1–8;

    एपि0 इ0 जिल्द 8, पृ0 36

    सरकार दिनेश चन्द्र, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, 1, 176; 3, 2, 5.

22. जातक पष्ठ -पृ0 3.

23. जातक प्रथम, पृ0 320.

24. रीज डेविड, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 67.

25. जयशंकर मिश्रा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ0 532.

26. जातक प्रथम, पृ0 251, 252, 269, 320-321, 377-78 तृतीय, पृ0 100.

27. जातक प्रथम, पृ0 121.

28. जातक षष्ठ, पृ0 47.

29. जातक प्रथम-द्वितीय, पृ0 129, पृ0 331.

30. वही, प्रथम, पृ0 124.

31. मोतीचन्द, सार्थवाह, पृ0 68.

32. जातक द्वितीय, पृ0 257, 305.

33. जातक प्रथम - पृ0 120.

34. धम्मपद अष्टकथा - द्वितीय, पृ0 313.

35. जातक प्रथम, पृ0 350.

36. धम्मपद अष्टकथा-तृतीय, पृ0 30.

37. जातक प्रथम, पृ0 9.

38. जातक प्रथम, पृ0 286, विनय पिटक प्रथम, पृ0 203.

39. जातक प्रथम, पृ0 281, विनय पिटक प्रथम, पृ0 203.

40. जातक प्रथम, पृ0 392.

41. जातक चतुर्थ, पृ0 248.

42. जातक प्रथम, पृ0 290, मिलिन्द0 प्रथम, पृ0 262.

43. विनय पिटक प्रथम, जातक चतुर्थ, पृ0 252.

44. जातक चतुर्थ, पृ0 401.

45. जातक द्वितीय, पृ0 240.

46. जातक प्रथम, पृ0 320, दीघनिकाय खण्ड 1, पृ0 78.

47. जातक चतुर्थ, पृ0 85.

48. जातक द्वितीय, पृ0 263.

49. जातक प्रथम, पृ0 194, दीघनिकाय प्रथम, पृ0 7, 12.

50. धम्मपद अष्ट कथा - प्रथम, पृ0 231.

51. विनयपिटक प्रथम, पृ0 46.

52. जातक प्रथम, पृ0 199.

53. जातक द्वितीय, पृ0 127.

54. जातक चतुर्थ, पृ0 15-17.

55. जातक पंचम, पृ0 34.

56. जातक तृतीय, पृ0 188.

57. जातक तृतीय, पृ0 126.

58. जातक चतुर्थ, पृ0 138-142.

59. मोतीचन्द, सार्थवाह, पृ0 63.

60. जे0आर0ए0एस0, 1898, पृ0 244-246.

61. जातक प्रथम, जातक द्वितीय, पृ0 295.

62. मजूमदार आर0सी0, दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 602.

63. मोतीचन्द, सार्थवाह, पृ0 4.

64. जातक द्वितीय, पृ0 248, तृतीय, पृ0 365.

65. जातक प्रथम, पृ0 124, पंचम, पृ0 283.

66. जातक षष्ठ, पृ0 427.

67. जातक प्रथम, पृ0 111, 239, तृतीय, पृ0 470, चतुर्थ, पृ0 136, 138, 142, 238.

68. जातक द्वितीय पृ0 127, 129, चतुर्थ, पृ0 15, जातक द्वितीय, पृ0 121.

69. रिचर्ड फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, शिशिर कुमार मित्रा (अनुवादक) वाराणसी, 1972, पृ0 279-80.

70. जातक प्रथम, द्वितीय, पृ0 197.

71. आर0सी0 मजूमदार, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, के0डी0 वाजपेयी (अनुवादक), पृ0 19-20.

72. जातक षष्ठ, पृ0 427.

73. वही, पृ0 427.

74. वही, पृ0 427.

75. वही, पृ0 427.

76. वही, पृ0 427.

77. नासिक अभिलेख, लूडर्स संख्या 1137.

78. जू-नर अभिलेख; लूडर्स संख्या 1165.

79. वही.

80. जातक षष्ट, पृ0 427.

81. नासिक अभिलेख, लूडर्स संख्या-1133.

82. वही, लूडर्स संख्या 1137.

83. वही.

84. जातक षष्ठ, पृ0 427.

85. वही.

86. वही.

87. जून्नर अभिलेख, लूडर्स संख्या 1165.

88. गौतम धर्मसूत्र 11-21.

89. जातक षष्ठ, पृ0 427.

90. वही.

91. वही, पृ0 427.

92. जातक तृतीय, पृ0 405.

93. जातक चतुर्थ, पृ0 137.

94. गौतम धर्मसूत्र, 11-21.

95. जातक प्रथम, पृ0 3.

96. जातक तृतीय, पृ0 388.

97. जातक द्वितीय, पृ0 335.

98. गौतम धर्मसूत्र, 11-21.

99. अष्टाध्यायी चतुर्थ, 3-118.

100. वही, पंचम, 4-95.

101. वही, तृतीय, 2-21.

102. वही, तृतीय, 1-145.

103. वही.

104. वही, चतुर्थ, पृ0 2-76.

105. वही, 2-11.

106. जातक द्वितीय, पृ0 388, तृतीय, पृ0 281, 405, चतुर्थ, पृ0 161.

107. वही, पृ0 2-52.

108. जातक प्रथम, पृ0 314.

109. जातक द्वितीय, पृ0 12, 52.

110. पालि इंगलिश डिक्शरी, पृ0 2, 3.

111. जातक प्रथम, पृ0 478.

112. जातक प्रथम, पृ0 191.

113. जातक षष्ठ, पृ0 270.

114. जातक प्रथम, पृ0 366, 432.

115. जातक षष्ठ, पृ0 43, 331, 344.

116. जातक चतुर्थ, पृ0 466.

117. जातक प्रथम, पृ0 120, द्वितीय, पृ0 50, 225, तृतीय, पृ0 51, 119, चतुर्थ, पृ0 62, 249, पंचम, पृ0 382, षष्ठ, पृ0 135.

118. जातक प्रथम, पृ0 377.

119. जातक प्रथम, पृ0 145, द्वितीय, पृ0 287, तृतीय, पृ0 56.

120. जातक प्रथम, पृ0 345, तृतीय, पृ0 128, चतुर्थ, पृ0 228.

121. जातक प्रथम, पृ0 40.

122. जातक द्वितीय, पृ0 382, चतुर्थ, पृ0 540.

123. आर0सी0 मजूमदार, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, पृ0 78.

124. जातक द्वितीय, पृ0 171, आर0एल0मेहता, प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 219.

125. रिचर्ड फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्टर्न इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, शिशिर कुमार मैत्रा (अनुवादक), पृ0 259.

126. बलराम श्रीवास्तव, ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ0 217.

127. धम्मपाद अष्टकथा, द्वितीय, पृ0 25; मललसेकर, डिक्शनरी ऑव पालि प्रापर नेम्स, प्रथम, पृ0 270.

128. जातक चतुर्थ, पृ0 256.

129. अगुत्तर निकाय, 1-7-2.

130. आर0एल0 मेहता, प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 219.

131. जातक प्रथम, पृ0 120, 269.

132. जातक तृतीय, पृ0 475.

133. बी0सी0 लॉ, इण्डिया ऐज डिस्क्राइव्ड इन अर्ली टेक्ट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म (लन्दन : 1941), पृ0 177-79.

134. जातक प्रथम, पृ0 345; द्वितीय पृ0 331, तृतीय, पृ0 56, 129.

135. जातक प्रथम, पृ0 467.

136 जातक चतुर्थ, पृ0 38.

137. जातक पंचम, पृ0 382.

138. याज्ञवल्क्य, 2-272.

139. जातक द्वितीय, पृ0 181.

140. वही, पृ0 31.

141. वही, चतुर्थ, पृ0 350.

142. वही, प्रथम पृ0 404, आर0के0 मुकर्जी, लोकल गवर्नमेण्ट इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ0 79.

143. जातक द्वितीय, पृ0 248.

144. जातक तृतीय, पृ0 126-27.

145. रोमिला थापर, अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ0 81.

146. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-19.

147. रोमिला थापर, अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ0 81-82

148. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-17.

149. वही, " द्वितीय-17.

150. वही, " द्वितीय-17.

151. वही, " द्वितीय-23.

152. वही, " द्वितीय-24.

153. वही, " द्वितीय-23.

154. वही, " द्वितीय-22.

155. वही, " द्वितीय-22.

156. वही, " द्वितीय-22.

157 आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-24.

158. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-24.

159. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-23.

160. वही, " द्वितीय-12.

161. वही, " द्वितीय-12.

162. आर0के0 मुकर्जी, चन्द्रगुप्त एण्ड हिस टाइम्स, पृ0 204.

163. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, 11-16.

164. बलराम श्रीवास्तव, ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ0 236.

165. रोमिला थापर, अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन.

166. इंडिका ऑव मेगस्थनीज, जे0 डब्लू0 मैककिण्डल (अनुवादक), ऐंशेंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन, (बम्बई : 1877).

167. आर0 शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, द्वितीय-11,

168. जे0 डब्लू0 मैक्किंडल, ऐंशेंट इण्डिया एज डिस्क्राइव्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन, पृ0 47-48.

169. ए0 कनिंघम, ऐंशेंट जिओग्राफी ऑव इण्डिया, (कलकत्ता : 1924), पृ0 52-57; वी0एस0 अग्रवाल, इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ0 245.

170. जे0डब्लू0 मैक्रिंडल, ऐंशेंट इण्डिया एण्ड इट्स इनवेंशन बाई एलेक्जेण्डर, (लन्दन : 1896), पृ0 150.

171. ए0 कनिंघम, ऐंशेंट जिओग्राफी ऑव इण्डिया, पृ0 52-57.

172. वी0एस0 अग्रवाल, इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ0 245.

173. आर0के0 मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स, पृ0 206.

174. कृष्णदत्त वाजपेयी, प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, (इन्दौर : 1951), पृ0 8.

175. मोतीचन्द, सार्थवाह, पृ0 23.

176. दक्षिण - पथ को ऋग्वेद में दक्षिणपाद कहा गया है।

ऋग्वेद, 61-8.

177. ऐतरेव ब्राह्मण, 18, अष्टाध्यायी, 1, 170.

178. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 117-119.

179. वी0एस0 अग्रवाल, प्रेसीडेण्डल एड्रेस, ऑल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस, द्वितीय, सेशन गौहाटी, 1965, पृ0 14.

180. ऋक्षवान पर्वत संभवतः विन्ध्य पर्वत रहा होगा.

181. एते गच्छन्ति बहवः पन्थानों दक्षिणापथम् ।

अवन्ती ऋक्षवन्तं च समतिक्म्य पर्वत ।।

महाभारत, वनपर्व 61-21.

196. महाभाष्य, 2-2-6,

197. काशिका, 6-2-13.

198. वही.

199. अमरकोश, क्षीरस्वामी (टीकाकार), 3-9-78, 'सार्थान्, सघनान, पान्थान वहति इति सार्थवाहः' .

200. सौन्दरनन्द, 18-50.

201. अवदानशतक, पृ0 103, 'मध्यदेशाद वणिंजो दक्षिणा पथगताः ।'

202. मोतीचंद, सार्थवाह, पृ0 2.

203. समुद्र वयवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौ व्यसेन विपन्नः .

अभिज्ञान शाकुन्तलम, अंक-6.

204. एपिग्रैफिया इण्डिका जिल्द 8, पृ0 78-79.

205. वही, वाल्यूम 8, पृ0 88.

206. वही, वाल्यूम 10, परिशिष्ट पृ0-137.

207. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2-192, नारद स्मृति 13-2.

208. मनुस्मृति, 8-219.

209. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2-186.

210 बृहस्पति स्मृति, 17-5; सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, वाल्यूम 30, पृ0 347, आर0सी0 मजूमदार, कार्पोरेट लाइफ इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ0 47.

211. मनुस्मृति, 8-41.

212. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1-961; नारद स्मृति, 10-2; सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, वाल्यूम 33, पृ0 153.

213. वृहस्पति स्मृति, 7-18; सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, वाल्यूम 33, पृ0 153.

214. हरिपद चक्रवर्ती, ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ0 322.

215. आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, रिपोर्ट्स 1911-12, नवम्बर 56-58.

216. वी0एन0 पुरी, इण्डिया अण्डर दि कुषाज (बम्बई : 1965), पृ0 107.

217. जातक खण्ड 1, पृ0 320.

218. दि पेरिप्लस ऑव दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एफ0 शाफ (सम्पादक), नई दिल्ली : 1914.

219. ई0एच0 वार्मिंगटन, कामर्स विट्वीन दि रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया, (कैम्ब्रिज : 1928).

220. आर0एस0 शर्मा, लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी एण्ड इकोनामी, पृ0-76.

221. इण्टरकोर्स विट्विन इण्डिया एण्ड द वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ0 109-110.

222. दि पेरिप्लस ऑव दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ (सम्पादक), पृ0 49-50, 52.

223. प्लिनी, 37, 20.

224. दि पेरिप्लस ऑव दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ, पृ0 48-49.

225. प्लिनी, 12, 15, 29.

226. दि पेरिप्लस ऑव दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ, पृ0 35

227. प्लिनी, 4, 20.

228. वही, 37, 23, 24.

229. वही, 16, 62.

230. दि पेरिप्लस ऑव दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ, पृ0 39.

231. सर जॉन मार्शल, तक्षशिक्षा, खण्ड-1, पृ0 26.

232. दि पेरिप्लस ऑफ दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ, पृ0 190.

233. प्लिनी, 16, 156-59.

234. दि पेरिप्लस ऑफ दि इरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच0 शाफ, पृ0 49.

235. जी0एल0 आद्या, अर्ली इण्डिया इकनांमिक्स, पृ0 157.

236. महाभारत 2, 32-17, रामायण, 43-12.

237. पेरिप्लस ऑप द एरिथ्रियन सी, विल्फर्ड एच शाफ.

238. कालिदास, अभिज्ञान शाकुंतलम्, प्रथम अंक, श्लोक 34.

239. आर0सी0 मजूमदार, सुवर्णद्वीप, खण्ड-एक.

240. प्लिनी, 4, 82.

241. आर0सी0 मजूमदार, द एज ऑफ एम्पीरियल यूनिटी, पृ0 658.

242. जैनग्रंथ पन्नवणा, 1. 61.

243. दीघनिकाय 2.50.

244. महावस्तु 3, पृ0 442.

245. रामायण - अयोध्याकाण्ड सर्ग 83, श्लोक 12.15.

246. मैके, फरदर इक्सकैवेशन एण्ट मोहनजोदड़ो, पृ0 441-43, 591.

247. अर्थ0 2.23.

248. महाभारत 13.111.104-60.

249. अंगविज्जा पृष्ठ 163-64, 221, 230-32.

250. मनुस्मृति 8.397. याज्ञ0 स्मृति 2.179-80.

251. अर्थ0 2.11.

252. हेरोडोटस 3.10.6.

253. प्लिनी, हिस्ट्री ऑफ प्लांट्स 4.8-10.

254. एरियन 13.38-40.

255. जातक 6.200.

256. अर्थ 2.11.

257. वही.

258. महाभारत सभापर्व 28.

259. मनुस्मृति 5.120.

260. अर्थ 2.11.

261. देखिये आद्या अर्ली इण्डियन इकोनामिक्स, पृ0 72.

262. अर्थ0 2.23.

263. अंगविज्जा, पृ0 160.

264. जातक 2.18; 4.207, 5.159; 6.426.

265. अलिनासित जातक जिल्द 2, संख्या 156.

266. महाउमग्गजातक जिल्द 6 संख्या 546.

267. मिलिन्दापन्हो, पृ0 413.

268. अर्थ0 2.17.

269. मेगस्थनीज, भारत वर्णन, पृ0 49.

270. अष्टाध्यायी, 5.4.95.

271. जातक, जिल्द 4 संख्या 466.

272. एनुअल रिपोर्ट ऑफ आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया 1912-13, पृ0 53.

273. अर्थ0 2.17.

274. वैदिक इण्डेक्स 2, पृ0 31-32.

275. आद्या, अर्ली इण्डियन इकोनॉमिक्स, पृ0 480.

276. मिलिन्दपन्हो 1.1.2.

277. अर्थ0 2.12.

278. वही.

279. देखिये, आद्या, अर्ली इण्डियन इकोनॉमिक्स, पृ0 49.

280. वही,

281. मार्शल तक्षशिला खण्ड 1, पृ0 103.

282. नियोगी, कल्चर इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, पृ0 13.

283. आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट 1902, प्री हिस्टारिकल एण्टीक्विटीज इन तिन्नेवली, पृ0 111-40.

300. महाभाष्य 5.12.

301. मनुस्मृति 4.218.

302. अर्थ0 2.11.

303. दास, एस0के0, इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ एशिएण्ट इण्डिया, पृ0 155.

304. अर्थ0 2.25.

305. महाभाष्य 5.2.112.

306. अर्थशास्त्र 2.25.

307. वही.

308. गेगस्थनीज, पृ0 33.

309. अर्थशास्त्र 2.25.

310. जातक 2, पृ0 18, 3 पृष्ठ 281; 4 पृष्ठ 159.206.

311. घोषाल यू0एन0, ओप0सीट0, पृ0 172.

312. पाणिनि की व्याकरण वृत्ति 6.2.63.

313. बौ0श्रो0सू0 15.14; आश्वालायन गृह्यसूत्र, 3.12.11.

314. जैन ग्रंथ आवश्यक चूर्णि 282.

315 अंगविज्जा, पृ0 160.

316 सिलवन्नाग जातक जिल्द 1 सख्या 72.

317. देखिये, डा0 जयमल राय, रूरल अरबन इकोनॉमी एण्ड सोशल चेन्जेज इन एशिएण्ट इण्डिया, पृ0 196.

318. अर्थशास्त्र 2.12.

319. डा0 राय, जयमल, पूर्वोद्धृत, पृ0 115.

320. कासवजातक, जिल्द 2, संख्या 221.

321. सीलवन्नाग जातक 1.320.

322. रीजडेविट्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 91; कासवजातक 2 पृष्ठ 197.

323. जैन जे0सी0, लाइफ इन एंशिएण्ट इण्डिया एज डंपिक्टेड इन जैन केमन्स, पृ0 100.

324 रामायण 2.10.14-15.

325. रामायण 5.10.2

326. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 5.2.20.

327. पी0एस0 पाठक (1981), पृ0 1.15.

328. ए0एल0 वाशम, वंडर दैट वाज इंडिया, पृ0 504.

329. भण्डारकर (1913-14).

330. डी0सी0 सरकार (1981) ''द इश्यू ऑफ पंचमार्क क्वाइंस'', जे0एन0एस आई0, जिल्द 22, पृ0 13-37.

331. कौटिल्य, 11, 12, और 11; 5.

332. एम0एच0 गोपाल, मौर्यन पब्लिक फाइनेंस, पृ0 167. 1710 195, उद्धृ एस0के0 मैटी, अर्ली इण्डियन क्वाइन्स एंड करेंसी सिस्टम पृ0 26.

333. वी0एन0 पुरी, इण्डिया, अण्डर द कुषाणाज, पृ0 115.

334. दिव्यावदान, पृ0 427.

335. महावस्तु, द्वितीय पृ0 275-8.

336. अवदान शतक, 36, पृ0 198.

337. वी0एन0 पुरी, इण्डिया अण्डर दि कुषाणाज, पृ0 115.

338. ऐंश्येंट इण्डिया, नं0 5, पृ0 97.

339. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1955-56, पृ0 237.

340. रिपोर्ट्स ऑन कुम्हरार, एक्सकैवेशन्स, 1951-55, पृ0 70.

341. इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू, 1958-59, पृ0 12.

342. वही, 1961-62, पृ0 56.

343. बुलेटिन ऑफ म्यूजियम्स एण्ड आर्कियालॉजी इन यू0पी0 न0-1 पृ0 37, इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू 1964-65, पृ0 77.

344. ऐंश्यॆंट इण्डिया न0 1, पृ0 39.

345. हिमांशु राय, मौर्य एवं सातवाहन, मौद्रिक व्यवस्था 1986, पृ0 152-158.

346. जातक प्रथम, पृ0 124, द्वितीय पृ0 31, चतुर्थ, पृ0 137.

347. वी0एस0 अग्रवाल (अनु0) (1955), पृ0 167-68.

348. कौटलीय अर्थशास्त्र, 2-4.

349. आर0शाम शास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2-21.

350. आर0एस0 शर्मा, पर्सपेक्टिव्स इन सोशल एण्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इण्डिया, पृ0 130.

350ए. शतपथ ब्राह्मण (5.3.2.2.)

351. पंचविंश ब्राह्मण (6.1.11.)

352. मैत्रायणी संहिता (4.2.7.10.)

353. 'कृष्ण जातीय' शब्द निरुक्त में तथा 'ब्राह्मण जातीय' शब्द अष्टाध्यायी में मिलता है। देखिये, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, पार्ट 1, पृ0 55.

354. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 2, 4, 18; तुलनीय विष्णु धर्मसूत्र 32, 17, जी0एस0 घुर्ये, कास्ट, क्लास एण्ड आक्यूपेशन, पृ0 74, 75 ई0ए0 एच0 ब्लण्ट, द कास्ट सिस्टम ऑव नार्दर्न इण्डिया, पृ0 14-15.

355. मज्झिम निकाय 3, 177, अंगुत्तर निकाय 4, 29, 34 तथा 5, 290-91; रीज डेविड बुद्धिस्ट इंडिया, पृ0 53; फिक, द सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ-ईस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम, अनुवादक एस0के0 मैत्र पृ0 17,

356. वी0एस0 अग्रवाल, इण्डिया ऐज नोन टु पाणिनि, पृ0 73.

357. मनुस्मृति 1.88; याज्ञवल्क्य स्मृति, 5.188; गौतम धर्मसूत्र 10, 1-2. बौधायन धर्मसूत्र 110.18.2; अर्थशास्त्र, 1.3.

358. पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, पार्ट 1, पृ0 142 (हिन्दी).

359. गौतम धर्मसूत्र 11.1; शतपथ ब्राह्मण में भी इसी तरह की बात कही गयी है।

360. बौधायन0 1,10, 18-19.

361. गौतम0 8, 12-13.

362. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2, 10, 26, 10.

363. अर्थशास्त्र 2, 1.

364. गौतम धर्मसूत्र, 10. 43-55.

365 गौतम धर्मसूत्र 21. 6-10.

366. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 5, 11. 5-9.

367. गौतम धर्मसूत्र 21.1; वसिष्ठ धर्मसूत्र 1.20.

368. रोमिला थापर (1977), अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, पृ0 63-103.

369. ई0 डब्ल्यू0 हापकिंस, द सोशल एण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑफ रूलिंग कास्ट इन इण्डिया, पृ0 17.

370. आर0एन0 मिश्रा, प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म, पृ0 90.

371. ई0 डब्ल्यू0 हापकिंस, द सोशल एण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑफ द रूलिंग कास्ट इन इण्डिया, पृ0 17.

372. रामगोपाल, इण्डिया ऑव वैदिक कल्पसूत्राज, पृ0 123.

373. गौ0 गृह्यसूत्र 1.1.15, पा0 गृह्यसूत्र, 1.2.3.

374. एम0एम0 सिह; लाइफ इन नार्थ-ईस्टर्न इण्डिया इन प्री-मौर्यन टाइम्स, पृ0 11-12.

375. महावग्ग 6, 28.4. दीघ निकाय, 1.67, 2, 145-46; मज्झिम निकाय 1, 176. 395, 502.

376. जातक 1, पृ0 152 तथा 470; 2, पृ0 124 तथा 241. 4, पृ0 227. (फासबाल).

377. जातक 2, पृ0 267; फिक द सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम पृ0 253.

378. जातक 4, पृ0 370.

379. जातक 2, पृ0 267.

380. जातक 1, पृ0 196.

381. जातक 2, पृ0 388.

382. फिक, द सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम, अनु0 एस0 के0 मैत्र, पृ0 255-57.

383. आर0एस0 शर्मा, आयरन एण्ड आर्गनाइजेश्न इन द गंगा बेसिन, द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, वाल्यूम नं0 1, मार्च 1974, पृ0 100.

384. जातक 1, पृ0 270; महावग्ग 8, 1, 16.

अय खो सेट्ठि गहपति बहूपकारो देवस्य च नेगमस्य च।

385. जातक 1, पृ0 645; 3.299, 3.475; 5.384.

386. जातक 6, 43.

387. जातक 2, 64.

388. जातक 1, 345; 3.128, 300, 444; 5. 382.

389. जातक ,4, 38

390. महाभारत (3, 24, 9, 16), हापकिस द सोशल एण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑव रूलिंग कास्ट इन इण्डिया, पृ0 25-26.

391 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.1.1.5.

392. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.3.9.9; तुलनीय मनुस्मृति 4.99.

393. गौतम 20.1.

394. विस्तृत विवरण के लिए, आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, अध्याय 4.

395. वसिष्ठ धर्मसूत्र 2.1.3.

396. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.4.14. 26-29. गौतम धर्मसूत्र 5. 41-42; आर0एस0 शर्मा शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 113.

397. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.5.17.1.

398. बौधायन 2.2.3.10.

399. वासष्ठ 18.47-50.

400. पाणिनि, अष्टाध्यायी (2.4.10)

देखिए जी0एस0पी0 मिश्र (1983).

401. महाभाष्य 1.475, वी0एस0 अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ0 94.

402. रोमिला थापर (1987 पुनर्मुद्रित) "सोशल मोबिलिटीज इन एंशियेंट इंडिया", ऐंशियेंट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, पृ0 128-129.

403. अर्थशास्त्र द्वितीय, 24.

411. उमा चक्रवर्ती (1987), पृ0 27-28.

412. आर0एन0 मिश्रा, प्राचीन भारतीय समाज अर्थव्यवस्था एवं धर्म, पृ0 90.

413. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2, 4, 9, 11.

'काममात्यानं भार्या पुत्रं वोपरुन्ध्यान्न त्वेव दासकर्मकरमं'.

414. अंगुत्तर निकाय 2.10.1; चुल्लवग्ग 4.4.6-7; दीघनिकाय 1, 64.

415. जातक, संख्या 92.

416. चुल्लवग्ग 6.4.2.

417. एन0सी0, बनर्जी, स्लेवरी इन ऐंश्येंट इंडिया द कैलकता रिव्यू, वाल्यूम 36, नं0 1-3, जुलाई सितम्बर, 1930, पृ0 251; यू0एन0 घोषाल, स्लवेरी इन ऐंश्येंट इंडिया, बिगनिंग ऑव हिस्टोरियोग्राफी एण्ड अदर एसेज मे, पृ0 93; देवराज चानना, स्लेवरी इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 146; के0एम0 सरन, लेबर इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 25; एम0एम0 सिंह लाइफ इन नाथ-ईस्टर्न इंडिया इन प्री मौर्यन टाइम्स, पृ0 27; संध्या मुकर्जी, समएस्पेक्ट्स ऑव सोशल लाइफ इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 176-177.

418 विनयपिटक 4. 224, यू0एन0 घोषल, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 462.

419. महावग्ग 1. 39.

420. मज्झिम निकाय 129, तुलनीय महाभारत 1, 16, 20.

421. जातक 6, पृ0 521, थेरी गाथा, 443-444; महाभारत, 12.109. 18.

422. जातक 1, पृ0 200, 241; 6. पृ0 389, 463.

423. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 3, 13.

424. जी0एम0 बानगार्ड लेविन (1978) "सम प्राब्लेम्स ऑफ सोशल स्ट्रक्चर ऑफ ऐंश्येंट इण्डिया", हिस्ट्री ऐन्ड सोसाइटी, सम्पादक देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, कलकत्ता, पृ0 205 तथा आगे।

425. वही, पृ0 208.

426. विशाखा जातक, महाभारत सभापर्व 52, 45; वनपर्व 185, 34; 233, 43, और विराट पर्व, 18, 21; द्रोण पर्व; 57, 5-9.

427. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 93.

428. दीघनिकाय 1. 141; अंगुत्तर निकाय 2, 207-8.

429. आर0एस0 शर्मा (1979), पृ0 92.

430. एवा एण्ड मरिया शीतलिश, स्डटीएन जुम कौटिल्य अर्थशास्त्र रिव्शल, ए रिव्यू बाई थियोडोर वर्गमैन, जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री, वाल्यूम 54, दिसम्बर 1976, पृ0 773.

431. गौतम धर्मसूत्र 4, 14,

432. बौधायन धर्मसूत्र 1, 9,क 3-5; 2. 2. 29.

433. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 18. 1-6.

434. ब्यूलर, सेक्रेड लॉज ऑफ द आर्याज, वाल्यूम, पार्ट-1, पृ0 198.

435. गौतम धर्मसूत्र 4, 15.

436. बौधायन 1, 88. 1. 9. 7-8.

437. अर्थशास्त्र 3, 7.

438. पूर्ववर्ती काल में चाण्डालों की हीन स्थिति के लिए द्रष्टव्य वाजपेयी संहिता 30, 21; तैत्रितीय ब्राह्मण : 3. 4. 17,1; छान्दोग्य उपनिषद और प्रश्नोपनिषद.

439. फिक, सोशल आर्गनाइजेशन ऑव नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम अनु0आर0एल0 मैज, पृ0 316-17.

440. गौतम धर्मसूत्र 4.15 तथा 23; पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र वाल्यूम 2, पार्ट, 1, पृ0 171.

441. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 4, 391.

442. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 126.

443. वही.

444. जातक 5, 449.

445. जातक 5, 429.

446. जातक 4. 388; एम0एम0 सिंह, लाइफ इन नार्थ-ईस्टर्न इण्डिया इन प्री-मौर्यन टाइम, पृ0 18.

447. स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरे पंचशिफा दद्यात् ।

आर0पी0 कांग्ले द्वारा सम्पादित, द कौटिलीय अर्थशास्त्र, 101.

'रज्जुशास्त्र विषैर्वाणि कामक्रोधवशेन यः

घातयेत्स्वपमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता

रज्जुना राजमार्गे तांश्चण्डलेनापकर्षयेत् ।

अर्थशास्त्र, पृ0 140 (47, 25-26); आर0 शामशास्त्री का अंग्रेजी अनुवाद भी द्रष्टव्य है, कौटिलीय अर्थशास्त्री, पृ0 179 तथा 249.

448. विष्णु धर्मसूत्र 16, 11; ए0एन0 बोस, सोशल एण्ड रूरल इकानॉमी ऑव नार्दर्न इण्डिया, पृ0 217.

449. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 128. फिक0 अनु0 एस0के0 मैत्र, 311; ए0एन0 बोस, पूर्वोद्धृत वाल्यूम 2, पृ0 225; रतिलाल एन0 मेहता, प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 263, एम0एन0 सिंह, पूवोद्धृत, पृ0 20.

450. एन0के0 दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन इण्डिया, वाल्यूम 1, पृ0 230.

451. जातक 3, 195; तुलनीय फिक, अनुवादक एस0के0 मैत्र, पृ0 311.

452. बौधायन धर्मसूत्र 1, 9, 14; पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, पार्ट 1, पृ0 88.

453. वसिष्ठ धर्मसूत्र 18, 5.

454. अर्थशास्त्र 3.7.31; कांग्ले द्वारा सम्पादित कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ0 107; शामशास्त्री, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ0 190.

455. फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, अनु0 एस0के0 मैत्र, पृ0 311.

456. जातक 3, 195.

457. फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम अनु0 एस0के0 मैत्र, पृ0 324.

रामगोपाल, इंडिया ऑव वैदिक कल्पसूत्राज, पृ0 115-16. विवेकानन्द झा, फ्राम ट्राइब टु अनटचेबुल, दि केस ऑव निषादाज; इण्डियन सोसाइटी

हिस्टारिकल प्रोविग्सइन द मेमरी ऑव डी0डी0 कौशाम्बी, सम्पादक आर0एस0 शर्मा, पृ0 68.

458. विवेकान्नद झा, फ्राम ट्राइव टु अनटचेबुल; द केस ऑफ निषादाज; इण्डियन सोसाइटी हिस्टारिकल प्रोविंग्स इन द मेमरी ऑव डी0डी0 कौशाम्बी, आर0एस0 शर्मा द्वारा सम्पादित, पृ0 75.

459. डी0डी0 कौशाम्बी, द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐंश्येंट इंडिया इन हिस्टारिकल आउट लाइन पृ0 51. जर्नल ऑव द बाम्बे ब्रांच ऑव रायल एशियाटिक सोसाइटी, न्यू सीरीज 12, 11946, पृ0 37.

460. जातक 1, 234 में ऐसे निषाद ग्रामों का उल्लेख है जिसमें एक प्रधान के अतर्गत 500 से 1000 शिकारी तथा मछली पकड़ने वाले परिवार रहते थे।

461. निषादराज नल का उल्लेख महाभारत 3. 55. 8-9 में प्राप्त होता है.

462. अष्टाध्यायी 4.1.100, एम0 वागले, सोसायटी एट द टाइमऑव बुद्ध, पृ0 124.

463. डी0डी0 कोसम्बी, द बेसिस ऑव इण्डियन हिस्ट्री, (1) जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी, जनवरी मार्च 1955, पृ0 44.

464. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 130.

465. वही,

466. बौधायन धर्मसूत्र, 1.9.17.3; 2.2.3.29, वसिष्ठ धर्मसूत्र 18.8; अर्थशास्त्र 3.7.21.

467. गौतम धर्मसूत्र 4, 14.

468. फिक, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, अनु0 एस0के0 मैत्र, पृ0 326; ए0एन0 बोस, स्पेशल एण्ड रूरल इकानॉमी आव नार्दर्न इण्डिया वाल्यूम 2, पृ0 234.

469. विष्णु धर्मसूत्र 18.2; पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2 पार्ट 1, पृ0 95.

470. ललित विस्तर, खण्ड 3.

471. बौ0ध0सू0, 1, 9, 17, 12.

472. विष्णु धर्मसूत्र, 18.2.

473. अर्थशास्त्र 3.7.32; आर0पी0 कांग्ले द्वारा सम्पादित, कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ0 107; आर0 साम शास्त्री, कौटिल्यस अर्थशास्त्र, पृ0 190.

474. सुत्त विभंगवाचित्तिय 2, 2, 1; फिक, अनु0 एस0के0 मैत्र, पृ0 326.

475. बौधायन गृह्यसूत्र 2,5.6 में तथा भारद्वाज गृह्यसूत्र 1.1. में रथकारों को उपनयन का अधिकार दिया गया है, परन्तु हिरण्यकेशि तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में उपनयन के संदर्भ में रथकारों का नाम नहीं लेते है.

476. आर0एस0 शर्मा, एस्पेक्ट्स ऑव पालिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीट्यूशन्स इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 110.

477. रामगोपाल, इंडिया, ऑव वैदिक कल्पसूत्र, पृ0 117.

478. कात्यानन श्रौत सूत्र 1.1.3 4.7.7., 4.9.3; बौधायन श्रौत सूत्र 24.16;

479. बौधायन धर्मसूत्र 1.9.17.6.

480. अर्थशास्त्र 3, 7, 35.

481. विवेकानन्द झा, स्टेट ऑव रथकाराज इन अर्ली इण्डियन हिस्ट्री; जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री पार्ट 1, अप्रैल 1974, पृ0 42.

482. जातक 6, 51.

483. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 129.

485. महाभारत 13, 117.19.

486. मनुस्मृति, 2.155.

विप्राणां ज्ञान तो ज्यैष्ठयं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।

वैश्यानां धान्यघनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।।

487. अंगविज्जा, पृ0 102.

488. मनु, 7, 17.

489. श्रीराम गोयल (1982), प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, पृ0 441-42.

490. मनु0 1, 93 तथा 94.

491. मनु0 वही, याज्ञवल्क्य 2, 34.

492. मनु0 1, 100.

493. मनु0 9, 313 तथा 314.

494. मनु0 9, 315; महाभारत 13, 136, 16.

495. मनु0 9 317; महाभारत 13, 136, 18 तथा 20.

496. मनु0 1, 96, तथा 98.

497. मनु0 8, 123-124; इसके पहले धर्मसूत्रों में ब्राह्मणों का यह विशेषाधिकार था कि वे निष्कासन के दण्ड से मुक्त थे। केवल बौधायन ने अनैतिक ब्राह्मणों के लिए शरीर दण्ड तथा निष्कासन का नियम निर्धारित किया है।

498. मनु0 8, 102.

499. मनु0 8. 268.

500. मनु0 10, 21.

501. याज्ञवल्क्य 2, 270. चोरी करने पर ब्राह्मण के ललाट पर चिन्ह बनाकर उसे राज्य से निर्वासित करने का विधान याज्ञवल्क्य ने निर्मित किया।

502. मनु0 1, 31.

503. मनु0 10, 89.

504. मनुस्मृति, 9, 229 तथा 242; महाभारत, अनुशासनपर्व, 136, 20-22.

505. मनु 9, 242.

506. मनु0 1, 90; याज्ञवल्क्य 1, 119.

507. मनु0 8, 410 तथा 418.

508. मनु0 9, 329.

509. मनु0 9, 330-333.

510. मनु0 8, 337.

511. मनु0 2, 37.

512. हरिपद चक्रवर्ती, ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 322.

513. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 217.

514. वही.

515. याज्ञवल्क्य 1, 120.

516. याज्ञवल्क्य 2, 194; नारद स्मृति 6, 2-3.

517. मनुस्मृति 4, 253; याज्ञवल्क्य 1, 166.

518. आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इंडिया, पृ0 177-78.

519. मनुस्मृति 8, 279-83.

520. लूडर्स लिस्ट नम्बर 32, 53-54; 345; 857; 1005; 1052; 1129.

521. महाभारत 12, 314, 45-46.

522. मनु0 8, 21; 8, 272.

523. मनु0 2, 238; महाभारत, 13, 48. 19.

524. याज्ञवल्क्य 2, 182; नारद 5, 30; 5, 32; 5, 33; 5, 34; 5, 40-42.

525. नारद 5, 40-42.

526. मनुस्मृति 8, 415,

ध्वजाहृतो भक्त दासो गृहजः कृतदत्रिमौ ।

पैतृकोदण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ।।

527. नारद स्मृति 5, 26.

528. याज्ञवल्क्य 2, 182.

529. मनुस्मृति 9, 179.

530. याज्ञवल्क्य 2, 236-37.

531. मनुस्मृति 7, 126.

532. याज्ञवल्क्य 2, 193 से 198.

533. मनुस्मृति 10, 15.

534 मनुस्मृति 10, 18; महाभारत 13, 48, 24.

535. मनुस्मृति 10, 32, महाभारत 13, 48, 19.

536. मनुस्मृति 10, 33.

537. मनु0 10, 34.

538. वही.

539. मनु0 10, 36; महाभारत 13, 48, 26.

540. मनु0 10, 36.

541. मनु0 10, 37; महाभारत, 13, 48, 26.

542. मनु0 10, 37; महाभारत 13, 48, 27.

543. महाभारत, 13, 48, 20.

544. महाभारत, 13, 48, 21.

545. महाभारत, 13, 48, 23.

546. महाभारत, 13, 48, 22,

547. महाभारत, 13, 48, 12 - बंदी तथा मागध दोनों की ही उत्पत्ति वैश्य पुरूष तथा क्षत्रिय स्त्री से बताई गयी है।

548. याज्ञवल्क्य, 1, 95.

549. याज्ञवल्क्य 1, 91.

550. मनु0 10, 11; महाभारत, 13, 48, 10.

551. मनु 10, 8; याज्ञवल्क्य 1, 91.

552. अष्टाध्यायी, (4.1.49).

553. शिवेश भट्टाचार्या (1976), "यवन एण्ड शकाज इन इण्डियन सोसायटी", आर्किव ओरियेताल्मी, क्वार्टली जर्नल ऑफ अफ्रीकन, एशियन एन्ड लैटिन अमेरिकन स्टडीज, एकेडिमिया, प्राहा, 2, जिल्द 44, पृ0 77-83.

554. मनुस्मृति, 10, 43-44.

555. शिवेश भट्टाचार्या, पूवोद्धृत,

556. मनुस्मृति, 10, 50; आर0एस0 शर्मा, शूद्राज इन ऐंश्येंट इण्डिया, पृ0 206.

557. विवेकानन्द झा 'स्टेजेज इन द हिस्ट्री ऑव अनटचेबुल्स.

558. मनुस्मृति, 8, 385.

559. वही, 10, 29-31.

****

अध्याय - पंचम

उपसंहार

छठी शताब्दी ई0पू0 से 200 ई0 तक के भारत के विषय में साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों से पर्याप्त सूचना उपलब्ध है। आधुनिक अध्ययनों में समाज के विकास की एकतरफा धारा के रैखिक विकास के बजाय अब उनकी सम्पूर्णता पर अधिक विचार किया गया है।

भारत में प्राचीनकाल से ही समय-समय पर ऐसे अनेकानेक साहित्य का निर्माण हुआ जिनसे भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मण बौद्ध एवं जैन धर्म जैसे मुख्य साहित्य के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की भी रचना की गयी जिनसे तत्कालीन समाज की गतिविधियों का पता चलता है। इतिहास और साहित्य दोनों विधाओं से युक्त अनेक कृतियाँ लिखी गयी जिनसे समाज का सांस्कृतिक जीवन उत्तरोतर मुखर होता है और उनके अनुपूरक सामग्री के रूप में, अभिलेख, मुद्रायें, अवशेष स्मारक आदि विविध पुरातात्विक सामग्रियों का प्रयोग भारतीय समाज के विविध पक्ष को उद्घाटित करने में किया जाता है जिससे इतिहास की प्रामाणिकता पुष्ट होती है। विदेशी लेखकों एवं यात्रियों के विवरण भी भारतीय समाज और अर्थ के इतिहास निर्माण में सहायता प्रदान करते है, यद्यपि इनके विवरण कभी-कभी बहुत ही विचित्र प्रतीत होते है।

विभिन्न स्रोतों के परिप्रेक्ष्यों की परस्पर भिन्न व्याख्याएँ की गई। मूलतः इस युग के जीवन, समाज, अर्थव्यवस्था में पूर्ववर्ती स्थिति से अनेक विषमतायें प्रकट होती है। जैसे बौद्ध ग्रंथों में समाज एवं अर्थव्यवस्था के विचार धर्मसूत्रों आदि के विचारों से अत्यन्त भिन्न है। धर्मसूत्रों में भी परस्पर वैचारिक अन्तर मिलते है, जैसे गौतम और बौधायन ने ब्राह्मण को कुसीद (महाजनी काम) की छूट दी है, यदि यह कार्य कृषि एवं वाणिज्य की भाँति ब्राह्मण किसी सहायक के माध्यम से करे, किन्तु

आपस्तम्ब में वार्धुषिक वृत्ति (बढ़ती ब्याज लेना) के विरूद्ध प्रायश्चित का निर्देश है, उन्होंने कुसीदी ब्राह्मण को शूद्र कहा।

किसी भी देश की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने में उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों एवं घटनाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर द्वितीय शताब्दी ई0 की राजनीतिक परिस्थितियों एवं घटनाओं ने भी उस युग की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। छठी-पाँचवी शताब्दी ई0पू0 राजनीतिक विश्रंखल का युग था। सम्पूर्ण देश अनेक स्वतंत्र राजतन्त्रों एवं गणतन्त्रों, में विभक्त था। सभी गणतंत्र जनजातीय थे। अतः अनेक जनजातीय राजवंशों के स्थापित होने से ब्राह्मणीय आदर्शो पर आधारित आनुवंशिक राजपद से मुक्ति और जनसाधारण को सभी अधिकारों से वंचित रखने वाली व्यवस्था से छुटकारा मिला होगा। मौर्यकाल में राजनीतिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने वर्णसंकरता के उद्भव व विकास को विशेष प्रोत्साहित किया। विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से द्वितीय शताब्दी ई0 के काल में जन्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से गहरा धक्का पहुँचा, परन्तु वह नष्ट नहीं हुई। अधीतकाल में ऐसी राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई कि देशी शासक वर्ग को अवनति तथा विदेशी शासकों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

विदेशी शासकों को मनु ने 'व्रात्यक्षत्रिय' की संज्ञा दी है। राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर लेने के कारण व्यक्तियों व निम्न कुलों के व्यक्ति भी उच्च सामाजिक वर्ण में प्रस्थान प्राप्त किये जैसे महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि। राजोपजीवी शूद्रों द्वारा ब्राह्मणों पर अत्याचार किये जाने की बात कूर्मपुराण के कलियुग-वर्णन में प्राप्त

होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह प्रक्रिया पहले से ही आरम्भ हो चुकी थी।

व्यक्ति के सामाजिक उत्थान-पतन के साथ ही उसका आर्थिक उत्थान-पतन भी होता है। आर्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में राज्य की नीतियों का भी योगदान होता है। जन से जनपद, जनपद से साम्राज्यीकरण की प्रक्रिया में राजस्व प्रणाली का स्थान महत्वपूर्ण होता गया। फलस्वरूप राज्य व्यवस्था सुदृढ़ होती चली गयी तथा मौर्य काल की समाप्ति के बाद भारत के राजनीतिक घटनाओं में बिखराव हुआ तथा भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर अभारतीयों का आधिपत्य वणिकों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ, क्योंकि इससे उन अंचलों के साथ व्यापार का अवसर मिला जो अब तक अछूते पड़े हुए थे। इस प्रकार व्यापारिक केन्द्रों में विभिन्न जनसमुदायों का जमावड़ा जाति-परिवर्तन में सहायक हुआ, जिसके मूल में आर्थिक सम्पन्नता थी।

अधीतकालीन सामाजार्थिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि में वैचारिक धार्मिक तत्वों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ई0पू0 छठी एवं पाँचवी शताब्दियों में अनेक महापुरूषों और मनीषियों के चिन्तन और उपदेश के साथ ही महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते है जिन्होंने न्यूनाधिक मात्रा में कुछ सामाजिक वर्गों के लिए क्लेश और उसके द्वारा जिज्ञासा के भाव को जन्म दिया होगा। लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में दो भिन्न विचार पद्धतियों की विचार भूमि पर आधारित एक नवीन संतुलन का निर्माण हो चला था। धर्म एवं दार्शनिक विचारधाराओं ने पूर्ववर्ती अनुशासन से भिन्न नवीन दृष्टियों का आन्दोलन प्रारम्भ किया एवं पूर्वस्थापित व्यवस्थाओं की प्रतिपक्षी व्यवस्थायें इस विचारधाराओं से प्रादुर्भूत हुई। इनमें कहीं तो नियतिवाद की झलक है, कहीं दुःख एवं संसार की निस्सारता का, कहीं

अहिसा एव तप पर अत्यन्त विश्वास है, तो कही देहात्मवाद का जिसमें केवल सुख भोगने की उत्कृष्ट अभिलाषा है। इन नयी परम्पराओं में कई वादों का जन्म हुआ जैसे कर्मवाद, क्रियावाद, नियतिवाद उच्छेदवाद, तपवाद, अज्ञानवाद आदि। इनसे सम्बन्धित विचार भी इस युग में प्रसिद्ध हुए।

यह सभी नवीन प्रवृत्तियाँ खासतौर पर छठी शताब्दी ई0पू0 एवं उससे पूर्व के आरम्भिक चरणों में विशेष बलवती हुई। इस युग में अनेक धर्म एवं दर्शनों का प्रचलन ुआ जो अनीश्वरवादी थे, वेदों की सत्ता को अस्वीकार करते थे। यज्ञादि में इन्हें विश्वास नहीं था। वैसे तो बदलती हुई सामाजार्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई विचारकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा योगदान दिया लेकिन जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित किया, बौद्ध तथा जैन धर्म ने। विशेष रूप से बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय हुआ। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित वर्ण-व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया तथा संघ में ऊँच-नीच सभी को समान स्थान देकर सामाजिक असमानता को समाप्त करने का प्रयास किया। हीन जातीय सदस्यों के उत्कर्ष का अवसर बौद्ध धर्म ने प्रदान किया। हिरि जातक में धर्माचरण करने से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल तथा पुक्कुस को देवताओं के समान तथा धर्मोपदेश का अधिकारी बताया गया है।

तप एवं अपरिग्रह इनकी जीवन-पद्धति के आधार थे। यद्यपि लौह युग में द्वितीय नगरीकरण की प्रवृत्तियों पर आधारित अर्थ एवं सामाजिक व्यवस्था को भी दृढ़ करने में इन नयी विचाराधाओं ने अपना योगदान दिया। इन धर्मो ने अहिंसा पर बल दिया ताकि कृषि में उपयोगी पशु धन की रक्षा हो सके। बुद्ध ने सभी को एक ऐसे नैतिक जीवन के पालन का उपदेश दिया जिसमें परिवार अतिथि, पितृ कुल, सम्बन्धी,

दास, कर्मकर आदि के पालन की व्यवस्था थी। राजा को कर देना, व्यापारी का ऋण चुकाना, ब्याज लेना आदि कृत्यों को भी बुद्ध का समर्थन प्राप्त था। बुद्ध ने विभिन्न शिल्पकर्मो को प्रोत्साहन दिया। पालिग्रंथों में ऐसे वाक्य मिलते हैं जो आदर्श कृषक या आदर्श श्रेष्ठी या कृषक गृहपति की व्यवसाय सम्बन्धी श्रम या सूझबूझ की प्रशंसा में है। जैनों की जीवन-पद्धति व्यापार एवं सम्पत्ति में सहायक थी जो नगरीय सभ्यता के विकास का आधार सिद्ध हुआ। इन सभी दृष्टियों से समसामयिक परिवर्तनशील समाज एवं अर्थ व्यवस्था का पोषक एवं उन्नायक यह धर्म एक नवीन व्यवस्था की स्थापना में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ।

युग बदला परिस्थितियाँ बदलीं और इन धर्मो ने नया कलेवर धारण किया। बौद्ध धर्म की अनेक नवीन शाखाएँ स्थापित हुई। वैष्णव्-शैव धर्म ने भी जहाँ एक ओर हीन वर्गीय व्यक्तियों के उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया वहीं इन धर्मो को अपनाकर कुछ विदेशी भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रविष्ट हुए।

धर्म के अतिरिक्त शिक्षा द्वारा भी व्यक्तिगत उन्नति तथा अवनति के उदाहरण धर्मसूत्रों में प्राप्त होते हैं। इस काल में स्त्रियाँ भी शैक्षिक, धार्मिक अधिकारों से वंचित की गयीं जो कि उनकी उन्नति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुआ। शिक्षा तथा धर्म के कारण यद्यपि स्त्रियों के व्यक्तिगत उन्नति के उदाहरण प्राप्त होते है फिर भी पूर्व वैदिककाल सी स्थिति इस समय नहीं दिखाई पड़ती। बौद्ध संघों में प्रवेश ही अधिकांश हीन वर्गीय स्त्रियों की उन्नति का माध्यम बनता दिखायी देता है। महाभारत के शांति पर्व में सर्वप्रथम शूद्रों को वेद सुनने का अधिकार दिया गया। शूद्र याजकों का उल्लेख मनुस्मृति में प्राप्त होता है। अनेकानेक ग्रंथों से पता चलता है कि प्राचीन

काल में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी जिससे उनकी सामाजार्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ होगा।

अधीतकालीन सामाजार्थिक परिवर्तन का स्वरूप मुख्यतः दो तत्वों में उद्घाटित होता है। पहला, नगरीकरण तथा दूसरा सामाजिक रूपान्तरण। महाजनपदों के काल से भारतीय नगरीकरण के इतिहास में युगान्तर का प्रवर्तन होता है कुछ नगर राजकीय परिस्थितियों के कारण विकसित हुए तो कुछ धार्मिक एवं शिक्षण केन्द्रों के रूप में लेकिन नगरीकरण में जो सबसे अधिक सहायक तत्व था, वह था व्यापार-वाणिज्य तथा उद्योग। नगरीकरण उत्पादन में समृद्धि के कारण सम्भव हुआ। नगरीकरण के अनिवार्य अंगों के रूप में इस युग में विकसित व्यापार प्रणाली, विनिमय की मौद्रिक व्यवस्था, बाजार की प्रणाली तथा उद्योग-धन्धों का विकास।

बुद्धकाल से ही भारत व्यापारिक दृष्टि से उल्लेखनीय काल का प्रतिनिधित्व करता है। अधीतकाल में व्यापार का पूर्णरूप से विकास हुआ और इससे सम्बद्ध प्रायः सभी पक्षों यथा श्रेणी-व्यवस्था पर आधारित व्यापारिक तथा व्यावसायिक संघटन वस्तुओं की बिक्री के लिए दुकान तथा बाजार, क्रय-विक्रय के लिए आवश्यक माप-तौल प्रणाली, विनिमय कार्य के लिए मुद्रा का चलन, ब्याज, मूल्य-निर्धारण, विकसित यातायात के साधन व्यापार की दृष्टि से आवश्यक राजकीय हस्तक्षेप और व्यापारिक कर का वाणिज्य में समावेश हुआ, जिसके फलस्वरूप उस समय अनेक प्रकार के उद्योग एवं व्यवसाय विकसित दशा में थे। वस्तुतः इस युग में व्यापारिक क्रियाकलाप इतने अधिक बढ़ चुके थे कि इस युग में भारत का न केवल देश के आंतरिक मार्गों से अपितु विदेशों से भी घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस

प्रकार समुद्र तथा महानदियों के व्यापारिक मार्गों पर व्यापारिक नगरों की स्थापना, हुई। फलस्वरूप नगरीकरण को बढावा मिला।

नगरीकरण का प्रारम्भ जो ईसा से 500-600 वर्ष पहले हुआ पर यह ई0पू0 200 और ई0 सन् 200-300 के बीच पराकाष्ठा पर पहुँचा, यही वह समय था जबकि देश का रोम के साथ समृद्ध व्यापार चल रहा था और यही समय था जबकि कुषाणों ने मध्य एशिया और भारतीय उपमहादेश को एक सूत्र में बांध रखा था। चीन से चलकर पश्चिम और यूरोप जाने वाला रेशम मार्ग का बड़ा भाग कुषाण साम्राज्य में पड़ता था। उत्खनित स्रोतों से पता चलता है कि इस काल में केवल मध्य गंगा के मैदानों में ही नहीं बल्कि पूर्वोत्तर हिस्सों को छोड़कर लगभग सारे देश में नगर बस गये। मध्य एशिया के साथ व्यापार होने के कारण उत्तरी भारत के शहरों का विकास हुआ तथा रोम और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार के कारण दक्षिण भारत के शहारों का विकास हुआ।

व्यापार और उद्योग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। मुख्य रूप से उद्योग का सगठन उन क्षेत्रों में हुआ जहाँ कच्चा माल सरलता से उपलब्ध था अथवा जहाँ किसी विशिष्ट शिल्प की परम्परा चली आ रही थी। शिल्पी निकटवर्ती क्षेत्रों में आंकर वहाँ एकत्र हो जाते। व्यापारिक और औद्योगिक श्रेणी, संघ समुत्थान इत्यादि समवायिक औद्योगिक संस्थानों की उत्पत्ति के प्रमाण भी सुरक्षित है, इन औद्योगिक सस्थानों की उत्पत्ति के साथ ही उन स्थानों को एक नगर का रूप धारण करना स्वाभाविक ही था।

मौद्रिक व्यवस्था के प्रादुर्भाव के साथ-साथ इस युग का अर्थतंत्र पर्याप्त विकसित हो गया एवं लेन देन पर आधारित वस्तु विनिमय इस विकास के साथ समाप्त होने लगा। नगरों के उत्थान में एवं व्यापार तथा वाणिज्य के लिए यह व्यवस्था अत्यन्त सहायक हुई।

अधीतकाल में घटित नवीन भौतिक राजनीतिक तथा धार्मिक परिवर्तनों ने सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की। कृषि के उत्तरोत्तर विकास से उत्पन्न अन्न के अतिरेक ने व्यापार वाणिज्य के विकास में योगदान दिया; व्यापार-वाणिज्य, उद्योग धन्धों, सुप्रतिष्ठित मुद्रा प्रणाली एवं नगरों के विकास ने व्यापारियों सेट्ठियों, गहपतियों तथा महाजनों के समुदाय के उद्‌भव तथा विकास की आधार शिला निर्मित की जो कृषि और पशुपालन में संलग्न अपने वर्ण के सामान्य सदस्यों की तुलना में धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। विभिन्न पेशेवरों का श्रेणियों के रूप में संगठन इस युग की नवीन देन है। वर्ण व्यवस्था और अधिक प्रतिष्ठित हुई जाति का उदय और विकास हुआ। जातियों के उदय तथा विकास में आर्थिक क़ारणों के साथ-साथ राजनीतिक एवं धार्मिक कारण भी थे। इसके अतिरिक्त जनजातियों का सम्मिलिन भी एक कारण के रूप में था। मौर्यकाल में राजनीतिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने भी जाति प्रथा के विकास में सहयोग दिया होगा।

सामाजिक स्तरीकरण वर्ण-व्यवस्था पर आधारित होने लगा था। अलग-अलग जीवन विधियों से सम्बन्धित होकर वर्ण एक दूसरे से अलग और अधिक स्पष्ट होने लगे थे। धर्मसूत्रों में वर्णो के कर्तव्यों के क्रमबद्ध वर्णन मिलते हैं। वर्णो को जन्म पर आधारित मानने की प्रवृत्ति दिखायी देने लगी थी जो जाति-व्यवस्था के विकास के

एक पक्ष की द्योतक है। शूद्रों पर आरोपित निर्योग्यतायें अपेक्षाकृत अधिक बढ़ गयी थी। दासों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख सर्वप्रथम कुछ बौद्ध ग्रथों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। कृषि कार्य में दासों की नियुक्ति की जाने लगी थी। बौद्ध धर्म में दासों के प्रति उदार-व्यवहार रखने का निर्देश दिया गया है। दासों के प्रकारों की बढ़ती संख्या के साथ दासों की मुक्ति की भी व्यवस्था मिलती है। कौटिल्य ने स्पष्ट व्यवस्था दी है कि यदि स्वामी से दासी को कोई सन्तति उत्पन्न हो जाये तो दोनों दासत्व से मुक्त हो जायेंगे। यदि मातृत्व सुख प्राप्त दासी स्वामी के घरेलू कार्यो के लिए नियुक्त है तो ऐसी स्थिति में उसके भाई-बहन भी दासत्व से मुक्त हो जायेंगे। याज्ञवल्क्य के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा के बिना दास नहीं बनाया जा सकता था। अतः ये उदाहरण दुर्बल होती हुई दास प्रथा की ओर संकेत करते है।

कुछ व्यावसायिक एवं जनजातीय समुदाय भी मिश्रित जातियों की अवधारणा के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत लाये गये तथा अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों के माध्यम से इनकी उत्पत्ति की कल्पना धर्मसूत्रों में की गयी। आर्थिक विकास के फलस्वरूप शासक तथा शासित वर्गो का स्वरूप भी पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होने लगा। शासक वर्ग में शासन तथा युद्ध से सम्बन्धित लोग रहे होंगे। पुरोहित तथा सम्पन्न व्यापारी एवं कुछ सम्पन्न शूद्र भी सम्मिलित रहे होंगे। शासित वर्ग के रूप में सामान्य वैश्य, निर्धन तथा अधिकारहीन शूद्र दास तथा अन्य हीन व्यवसायों द्वारा जीवन-यापन करने वालों के अतिरिक्त कुछ ऐसे क्षत्रिय तथा ब्राह्मण भी थे जो आर्थिक विपन्नता के कारण अपने धर्मपालन से जीविका चलाने में असमर्थ हो, हीन माने जाने वाले व्यवसायों में संलग्न हो गये थे।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर विदेशी आक्रमण व उनका भारतीय समाज में सम्मिलन भी सामाजिक रूपान्तरण के सम्भव कारण सिद्ध हुए।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

मूल-ग्रंथ

अंगविज्जा : प्राकृत टेक्ट्स सोसाइटी, वाराणसी, 1957.

अगुत्तर निकाय : सपादक, आर0 मोरिस और ई हार्डी, लंदन, 1883-1900.

अथर्ववेद : संपादक, आर0 रोथ और डब्ल्यू0 डी0 ह्विट्ने, वर्लिन, 1856.

सपादक, श्रीपाद शर्मा, औषध नगर, 1938.

अष्टाध्यायी : संपादक, एस0सी0 बसु, मोतीलाल बनारसीदास 1962.

निर्णय सागर प्रेस, 1929.

आचाराग सूत्र : अनुवाद, जेकोबी, 22, आक्सफोर्ड, 1884.

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : सुदर्शनाचार्य की टीका सहित, मैसूर.

गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी सिरीज.

सम्पादक, एम0 विन्टरनित्ज, वियना, 1887.

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : हरदत्त की टीका सहित, चौखम्भा, संस्कृत सिरीज, वाराणसी।

आश्वालयन गृह्यसूत्र : नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1894.

उपनिषद् : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.

गीता प्रेस, गोरखपुर।

ऐतरेय ब्राह्मण : षडगुरूशिष्यकृत सुखप्रदावृति सहित, श्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम।

ऋग्वेद : सायण भाष्य सहित, सम्पादक, एफ0 मैक्समूलर, 1890-92; पांच भाग.

वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933-51.

कौटिलीय अर्थशास्त्र : संपादक, आर0 शामशास्त्री, मैसूर, 1909-1929.

आर0पी0 कांग्ले, बम्बई, 1969.

गौतम धर्मसूत्र : हरदत्त टीका सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, 1910.

चुल्लवग्ग : सम्पादक, भिक्षु जगदीश कश्यप,

पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहार गवर्नमेण्ट, 1958.

जातक : सम्पादक, फाउल्सबोल, 1877-97;

कैम्ब्रिज, अनुवाद, 1895-1913;

हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन।

थेरंगाथा : सम्पादक, एच0 ओल्डेनबर्ग, लन्दन 1883 ।

अग्रेजी अनुवाद, रीज डेविड्स, लदन 1913 ।

थेरीगाथा : सम्पादक, एच0 ओल्डेनबर्ग, लंदन, 1883 ।

अंग्रेजी अनुवाद रीज डेविड्स 1909 ।

दीघनिकाय : संपादक, रीज डेविड्स और ई0 कार्पेन्टर, लन्दन 1890-1911,

हिन्दी अनुवाद, राहलुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ, वाराणसी, 1936.

संपादक, भिक्षु जगदीश कश्यप, पालि पब्लिकेशन बोड, बिहार गवर्नमेंट, 1958.

धम्मपद : संपादक, राहुल सांस्कृत्यायन, रंगून, 1937 ।

नारद स्मृति : संपादक, जे0 जौली, सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, 33, आक्सफोर्ड, 1889.

निदान कथा : संपादक, एन0के0 भागवत, बम्बई, 1935.

पतंजलि : महाभाष्य, संपादक, एफ0 कीलहार्न, बम्बई.

महाभाष्य, मिर्जापुर, 1855.

पचित्तियाँ : पालि पब्लिकेशन बोर्ड, बिहार गवर्नमेंट, 1958.

पचविंश ब्राह्मण : अंग्रेजी अनुवाद, डब्ल्यू0 कालैंड, एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, कलकत्ता, 1931.

बौधायन गृह्यसूत्र : सम्पादक, आर0 शामशास्त्री, मैसूर, 1920.

बौधायन धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज.

मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1946.

कुल्लुक महविरचिता हिन्दी व्याख्याकार.

हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1970;

मेघातिथि की टीका के साथ, कलकत्ता, 1932.

सम्पादक बी0एन0 माण्डलिक, बम्बई 1886, अंग्रेजी अनुवाद, जार्ज ब्यूलर, सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, 25, आक्सफोर्ड, 1886.

महाभारत नीलकण्ठ की टीका सहित, पूना, 1929-33;

गीता प्रेस, गोरखपुर.

महावग्ग पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहार गवर्नमेन्ट, 1956.

मज्झिम निकाय	सम्पादक, भिक्षु जगदीश कश्यप, पालिपब्लिकेशन, बोर्ड, बिहार गवर्नमेण्ट, 1958.
मिताक्षरा	विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्यस्मृति पर भाष्य, बम्बई, 1905.
मिलिन्दपन्हो	बाम्बे यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स देवनागरी पालि टेक्स्ट्स सिरीज, 1940.
	सम्पादक, बी0 ट्रेकनर, लन्दन, 1928,
	अंग्रेजी अनुवाद, रीज डेविड्स, सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट, 35-36, आक्सफोर्ड 1890-4.
महावस्तु	सम्पादक, ई0 सेनार्ट, पेरिस, 1882-97.
याज्ञवल्क्य स्मृति	संपादक, जे0आर0 धरपुरे, बम्बई, 1929.
	हिन्दी व्याख्याकार, उमेश चन्द पाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1967.
	चौखम्भा संस्कृत सिरीज, बनारस, 1986.
रामायण	मद्रास, 1933; गीता प्रेस, गोरखपुर.
	निर्णय सागर संस्करण, कलकत्ता, 1881-82.

विनयपिटक : अनुवाद, रीजडेविड्स, आक्सफोर्ड, 1881-85, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ, 1935.

वज्र सूची : सम्पादक तथा अनुवादक, सुजित कुमार मुखोपाध्याय, शांति निकेतन, 1950.

वसिष्ठ धर्मसूत्र : सम्पादक, ए0ए0 फुहरर, बम्बई, 1916.

सुत्तनिपात : राहुल सांकृत्यायन, रंगून, 1937.

संयुक्त निकाय : संपादक, एम0एफ0 फीर,

: अंग्रेजी अनुवाद, रीज डेविड्स वाल्यूम 1-2, एफ0एल0 वुडवर्ड, वाल्यूम 3-4, लन्दन, 1917-19.

सूयगड्म : सम्पादक, पी0एल0 वैद्य, बम्बई, 1928.

एरियन : मिक्रिंडल, जी0 डब्ल्यू0, ऐंशियेंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन.

डायोडोरस : मिक्रिंडल, ऐंशियेंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन.

पेरिप्लस : पेरिप्लस ऑव द एरिथ्रियन सी, सम्पादक, विल्फर्ड एच0 शॉफ.

प्लिनी — मिक्रिडल, ऐंशियेंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन. कलकत्ता, 1877.

स्ट्रेबो — मिक्रिंडल, ऐंशियेंट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन, कलकत्ता, 1877.

आधुनिक ग्रंथ

अग्रवाल, वासुदेवशरण - पाणिनि कालीन भारत, वाराणसी, 1955.

- प्रेसिडेन्टल एड्रेस, ऑल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस-2 सेशन, गौहाटी, 1965.

अल्तेकर, ए0एस0 - प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, इलाहबाद 1959.

- पोजीशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1956.

आद्या, जी0एल0 - अर्ली इण्डियन इकोनॉमिक्स, न्यूयार्क, 1966.

आयंगर, के0वी0 आर0 - आस्पेक्ट्स ऑफ सोशल एण्ड पोलिटिकल सिस्टम मनुस्मृति, लखनऊ, 1949.

उपाध्याय, जी0पी0 - ब्राह्मणाज इन ऐंशिऐंट इण्डिया, नई दिल्ली, 1979.

काणे, पाण्डुरंग वामन - धर्मशास्त्र का इतिहास, पांच भाग, अनुवादक अर्जुन चौबे कश्यप, लखनऊ, 1973.

कोशाम्बी, डी0डी0 - कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ ऐंशियेंट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन, 1965.

– एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई 7, 1956.

कांग्ले, आर0पी0 – दि कौटिल्य अर्थशास्त्र, बम्बई, 1965.

गोपाल, लल्लन जी – दि इकोनॉमिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1965, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, 1965.

गैरोला, वाचस्पति – भारतीय संस्कृति और कला.

गोयल, श्रीराम – प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, 1982.

घोष, ए0 – द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑव एडवान्स्ड स्टडी, शिमला, 1973.

घोषाल, यू0एन0 – ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन पब्लिक लाइफ, वाल्यूम 2, लंदन, 1966.

– अग्रेरियन सिस्टम इन एंशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1930.

धुर्ये, जी0एस0 – कास्ट, क्लास एण्ड आकुपेशन, बम्बई, 1961.

चकलदार, एच0सी0 – सोशल लाइफ इन ऐंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1929.

चक्रवर्ती, हरिपद - ट्रेड एण्ड कामर्स इन ऐंश्येंट इण्डिया, कलकत्ता, 9, 1966.

चट्टोपाध्याय, एस0 - सोशल लाइफ इन एंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1965.

चानना, देवराज - स्लेवरी इन ऐंशियेंट इण्डिया, पीपुल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1960.

चट्टोपाध्याय, ए0के0 - स्लेवरी इन इण्डिया, कलकत्ता-12.

जायसवाल, के0पी0 - हिन्दी पोलिटी, बंगलौर, 1943.

जैन, पी0सी0 - लेवर इन ऐंशियेंट इण्डिया, नई दिल्ली, 1971.

जैन, जे0सी0 - लाइन इन ऐंशियेंट इण्डिया एज डंपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स, बम्बई, 1947.

जायसवाल, सुवीरा - द ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑव वैष्णविज्म, ओरिएण्टल पब्लिशर्स एण्ड बुक सेलर्स, दिल्ली-7, 1967.

झा, द्विजेन्द्र नारायण - ऐंशियेंट इण्डिया एन इन्ट्रोडक्टरी आउट लाइन, पीपुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1967.

झा, डी0एन0 - मौर्योत्तर तथा गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था, अनुवाद हरीशचन्द्र सत्यार्थी, दिल्ली, 1977.

थापर, रोमिला - अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, अनुवाद, डी0आर0 चौधरी, श्रीमती राजेश प्रभा यादव, दिल्ली, 1977.

- भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990.

- सोशल मोबिलिटी इन एंशियेंट इाण्डया, 1987 पुनर्मुद्रित.

नेगी, जे0एस0 - सम इण्डोलाजिकल स्टडीज, इलाहाबाद, 1966.

नेसफील्ड, जे0सी0 - ब्रीफ ब्यू ऑफ दि कास्ट सिस्टम ऑफ दि नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, इलाहाबाद, 1885.

निगम, एस0एस0 - इकोनामिक आर्गनाइजेशन इन ऐंशियेंट इण्डिया.

पाण्डेय, जी0सी0 - बौध धर्म के विकास का इतिहास लखनऊ, 1993.

पाण्डेय, चन्द्रभान - आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास. नई दिल्ली, 1963.

पुरी, बी0एन0 इण्डिया अण्डर द कुषाणाज, बम्बई, 1965.

फिक, रिचर्ड, - दि सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, अनुवादक, मैत्र, शिशिर कुमार, वाराणसी, 1972.

ब्लन्ट, इ0ए0एच0 - दि कास्ट सिस्टम ऑफ नार्दर्न इण्डिया, 1969.

बोस, ए0एन0 - सोशल एण्ड रूरल इकोनॉमी ऑफ नार्दर्न इण्डिया, जिल्द 1, कलकत्ता, 1961, जिल्द 2, कलकत्ता, 1945.

ब्रोफ, जे0 - अर्ली, ब्राह्मनिकल सिस्टम ऑफ गोत्र एण्ड प्रवर, कैम्ब्रिज, 1953.

बुद्ध प्रकाश, - स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, 1962.

बरूआ, बी0एम0 - अशोका एण्ड हिज इन्स्क्रिप्शन्स, कलकत्ता, 1946.

भण्डारकर, डी0आर0 - कार्माइकेल लेक्चर्स, कलकत्ता, 1919.

भट्टाचार्या, एस0सी0 - सम आस्पेक्टस ऑफ इण्डियन सोसाण्टी, कलकत्ता, 1978.

मजूमदार, रमेश चन्द्र - प्राचीन भारत में संघटित जीवन अनुवादक, कृष्णदत्त वाजपेयी, जबलपुर, 1966.

	-	कारपोरेट लाइफ इन ऐंशियेंट इण्डिया,, कलकत्ता, 1922.
एम0 ह्वीलर	-	रोम बियाण्ड द इंपीरियल फ्रंडियर्स, पंलिकन, 1955.
मेहता, आर0एन0	-	प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, बम्बई, 1939.
मुकर्जी, आर0के0	-	ऐंशियेंट इण्डियन एजूकेशन, मोतीलाल बनारसीदास, 1960.
	-	चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टीम, वाराणसी 1966.
मोतीचन्द्र	-	सार्थवाह, पटना, 1953.
मिश्र, जी0एस0पी0	-	दि एज ऑफ विजय, दिल्ली, 1972.
मिश्र, जयशंकर	-	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1983.
मैटी, एस0के0	-	अर्ली इण्डियन टाइम्स एण्ड करेंसी सिस्टम्स.
राय, जयमल	-	दि रूरल अर्बन इकोनॉमी एण्ड सोशल चेन्जेज इन ऐंशियेंट इण्डिया,, वाराणसी, 1974.
राय, उदयनारायण	-	प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1965.

रांलिन्सन, एच0जी0 – इण्टरकोर्स विटवीन इण्डिया एण्ड दि एंशिएण्ट वर्ल्ड, कैम्ब्रिज, 1916.

रैप्सन, ई0जे0 – इण्डियन क्वाइन्स, स्ट्रासबर्ग, 1897.

रीज डेविड्स – बुद्धिस्ट इण्डिया, लन्दन, 1903.

राय चौधरी, हेमचन्द्र – प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, किताब महल-22ए, सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद.

ला, बी0सी0 – इण्डिया एज डिस्क्राब्ड इन द अर्ली टेक्सट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, लन्दन, 1941.

लेविन, जी0एम0 बानगार्ड – सम प्राब्लेम्स ऑव सोशल स्ट्रक्टचर ऑफ ऐंशियेंट इण्डिया, 1978.

विद्यालंकार, सत्यकेतु – प्राचीन भारत की शासन संस्थायें और राजनीतिक विचार, दिल्ली, 1975.

वाजपेयी, कृष्णदत्त – प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, इन्दौर, 1951.

वाग्ले, नरेन्द्र – सोसायटी एट द टाइम ऑव दि बुद्ध, बम्बई, 1966.

शर्मा, जी0आर0 – दि एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1960.

– प्राचीन भारत राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 1992, पाचवी आवृत्ति, 2001.

– प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वयक निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.

– आयन एण्ड आर्गनाइजेशन इन द गंगा बेसिन।

– सम्पादक, इण्डियन सोसाइटी हिस्टारिकल प्रॉविंग्स इन द मेमोरी ऑव डी0डी0 कोसम्बी.

शास्त्री, नीलकण्ठ – नन्द-मौययुगीन भारत, अनुवादक मंगल नाथ सिंह, दिल्ली, 1969.

सरकार, डी0सी0 – सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स, बीयरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्र एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम-1, कलकत्ता, 1942.

– सोशल लाइफ इन ऐंशियेंट इण्डिया, युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1971.

सरन, के0एम0 – लेबर इन ऐंशियेंट इण्डिया.

हट्टन, जे0एच0 – कास्ट इन इण्डिया, बम्बई, 1963.

हॉपकिन्स — सोशल एण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑफ रूलिंग कास्ट इन इण्डिया, ओरियण्टल पब्लिसर्स एण्ड बुक सेलर्स, वाराणसी, 1972.

महत्वपूर्ण पुरातत्व सामग्री

अल्तेकर, ए0एस0 - रिपोर्ट ऑन कुम्रहार इक्सकैवेशंस, 1951-55, पटना, 1959.

नियोगी, पी0 - आयरन इन ऐंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1914.

- कापर इन ऐंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1918.

मार्शल - तक्षशिला (तीन खण्ड में), 1951.

रीध, एच0 - रंगमहल, दि स्वेदिश आर्क्योलोजिकल इक्सपेन्डीशन टू इण्डिया, 1952-54.

लाल, वी0वी0 - इक्सकैवेशंस एट हस्तिनापुर एण्ड अदर इक्सप्लोरेशंस ए हाई 10 और 11, 1954-55.

शर्मा, जी0आर0 - इक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी, 1957-59, इलाहाबाद, 1960; कुषाण स्टडीज (सम्पादित) युनिवर्सिटी ऑव इलाहाबाद।

साहनी डी0आर0 - आर्क्योलोजिकल रिमेन्स एण्ड इक्सवेशन्स एज वैराट, जयपुर, 1937.

सिन्हा, के0के0 - एक्सकैवेशन एट श्रावस्ती.

ह्वीलर, एम0 - अरिकामेडु, एन इण्डो-रोमन ट्रेडिंग सेन्टर ऑन इस्ट-कोस्ट ऑफ इण्डिया, ए आई, दो, 1946-47.

अनुसंधान पत्रिकाय एवं जर्नल्स

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट्स.

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, मेमायर्स.

इण्डियन आर्कियोलॉजी – ए रिव्यू.

इण्डियन एन्टीक्वेरी.

इण्डियन कल्चर.

इकोनामिक डेवलपमेंट एण्ड कल्चर बेंच.

एपिग्रैफिया इण्डिका.

एनल्स ऑफ द भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट.

जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी.

जर्नल ऑफ द बाम्बे ब्रांच ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज.

जर्नल ऑफ द न्यूमसमेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, बाम्बे.

जर्नल ऑफ द इकोनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएण्ट.

द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू नं0 1, मार्च 1974.

द कलकत्ता रिव्यू.

आर्किव ओरियेताल्मी, क्वार्टली जर्नल ऑफ अफ्रीकन एशियन ऐंड लैटिन अमेरि

स्टडीज एकेडमिया, प्राहा.

संकेत-शब्द-सूची

अर्थ0	अर्थशास्त्र
आ0 ध0 सू0	आपस्तम्ब धर्मसूत्र
एपि0इ0	एपिग्रौफिया इण्डिका
का0 श्रौ0 सू0	कात्यायन-श्रौतसूत्र
गौ0 ध0 सू0	गौतम धर्म सूत्र
व0 ध0 सू0	वसिष्ठ धर्म सूत्र
बौ0 ध0 सू0	बौधायन धर्म सूत्र
बो0 श्रो0 सू0	बौधायन श्रौत सूत्र
मनु0	मनुस्मृति
याज्ञ0 स्मृति	याज्ञवल्क्य स्मृति